विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में पंचम खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

पंचम खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :

परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :

राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :

प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :

साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम ए. पीएच-डी)

साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगी

रेवतड़ा (राज.) निवासी श्रीमान् शा. मीठालालजी, अशोककुमार, घीसूलाल, महेन्द्रकुमार, विमलकुमार, मुकेशकुमार, आशीष, पंकज, रोहित बेटा-पोता-पड़पोता श्री उकचन्दजी हीराणी ।

प्राप्ति स्थान

श्री मदनराजजी जैन

द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी

आधुनिक वस्त्र विक्रेता

सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९

फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति

वीर सम्वत् : २५२५

राजेन्द्र सम्वत् : ९२

विक्रम सम्वत् : २०५५

ईस्वी सन् : १९९८

मूल्य : ५०-००

प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन

लेखित

१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण

सर्वोदय ओफसेट

प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?

विश्व … नीय
श्रीमद्विजय … धरजी म.

सन्त आचार्य
सेन

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

साध्वी प्रियदर्शनाश्री
साध्वी सुदर्शनाश्री

शुभाकांक्षा !

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है । रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष। अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं। सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) ।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके । गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको ।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । 'गागर में सागर है' । गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है । निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं ।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने ।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को । वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा ।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — *- विजय जयन्तसेन सूरि*
अहमदाबाद
दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

3

मंगल कामना

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि,

अनुवंदना सुखसाता।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। पुस्तकें सुंदर हैं। आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है। आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है । जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर । आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है । निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है । वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है ।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं । वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है । क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है । स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता । श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं ।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है ।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं ।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती । अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कपाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल
वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

पुरोवाक्

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर – स्वर्णगिरितीर्थ – विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय–मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन–पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई । फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी । उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए ! और हम चित्र लिखित–सी रह गई । तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष । तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु–सञ्चय होगा, वह जनता–जनार्दन को देंगी ! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी । उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ–प्रणयन की आत्मा है ।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति–सुधारस' के लेखन –कार्य का शुभारम्भ किया ।

वस्तुतः इस ग्रन्थ–प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा–वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है ।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है । सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन । सूक्ति अर्थात् सुकथन । सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है । सैंकडों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ । सुत्तनिपात में कहा है –

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं । दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1 सुत्तनिपात – 2/216

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

निःसंदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है – "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है – "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है – "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ अन्तस्तल

---

1. अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
   अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
   योगवाशिष्ठ 5/4'5
2. प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
   सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
   ज्ञानार्णव
3. कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
   आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ – शिवलीलार्णव
4. नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी – योग वाशिष्ठ 5/4/5

को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई। मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई।"

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं। इनका प्रभाव गहन हैं। ये अन्तर ज्योति जगाती हैं।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी। इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया। लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म सा [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह पंचम सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है : **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

– श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
– श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु
डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.

आभार

हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डॉ. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षो से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारूतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं। इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं। बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है। बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं। इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये। इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया। तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें।

पौष शुक्ला सप्तमी — *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

5 जनवरी, 1998 — *डॉ. सुदर्शनाश्री*

7

सुकृत सहयोगी

श्रुतज्ञानानुरागी श्रेष्ठिवर्य,

श्रीमान् मीठालालजी उकचन्दजी हीराणी !

परमगुरुभक्त धर्मानुरागी श्रावकरत्न रेवतड़ा निवासी शा. मीठालालजी हीराणी सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अतिशय उत्साह एवं उल्लासपूर्वक तन-मन-धन से सदैव सहयोग देते हैं ।

आपका विद्यानुराग उत्कृष्ट है । यद्यपि वे लक्ष्मीवन्त हैं, फिरभी विनम्रता उनका उत्कृष्ट गुण है । साथ ही आप सूझबूझ के धनी हैं ।

निश्चय ही उनका लक्ष्य है : 'सा विद्या या विमुक्तये' । 'कुमारपाल प्रतिबोध' में कहा है : "ज्ञान मोहान्धकार को नाश करने में सूर्य के समान है । ज्ञान कल्पवृक्ष के समान है । ज्ञान देर्जय कुंजरों की घटाओं को भेदने में सिंह के समान है । ज्ञान जीव-अजीव वस्तु-विचार का स्वरूप बतानेवाली तीसरी आँख है ।

उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिभावपूर्वक प.पूज्यपाद राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद्विजयजयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. का अपने ग्राम में ऐतिहासिक-यशस्वी चातुर्मास करवाया ।

गुरुतीर्थ जन्मभूमि भरतपुर में निर्माणाधीन विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि कीर्तिमंदिर के आप ट्रस्टी हैं । आपके पहले उनके पिताश्री भरतपुर गुरुमंदिर के उपाध्यक्ष रहे हैं।

आप वर्तमान में अ.भा.श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद के उपाध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं । श्रीनवकार तीर्थ के निर्माण में आपका पूर्ण सहयोग है । इस प्रकार आप अनेकानेक सत्कार्यों में उत्साहपूर्वक रुचि लेते हैं ।

आप "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति सुधारस" (पंचम खण्ड) का प्रकाशन करवा रहे हैं । उनकी इस शुभ भावना के लिए हमारी जीवन-निर्मात्री प. श्रद्धेया प.पू. साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. (पू.दादीजी म.) 'आशीष देती हैं तथा हमारी ओर से आभार और धन्यवाद । वे भविष्य में भी ऐसे सुकृतकार्यों सदा सहयोग देते रहेंगे । यही हमें आशा है ।

— डॉ. प्रियदर्शनाश्री

— डॉ. सुदर्शनाश्री

– डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे। उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे। उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया। विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली। उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ – 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया। विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे। सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें। स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक –

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा –
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह ओर पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति — 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए — जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है । इनकी

व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्‌गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने **'अभिधान राजेन्द्र कोष'** का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्‌घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्त्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए ८0 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोप की रचना में लगाये होंगे । 14 वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृपित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)

— *डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी*
(पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है । ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं । एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है । युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है । इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है ।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे । अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी । इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ । भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है । लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है । साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना ओर प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F. White House,
10, Bhagwandas Road
New Delhi-110001

— पं. दलसुख मालवणिया

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं। उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है। साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा।

दिनांक : 30-4-98

माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

11

सूक्ति-सुधारस: मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थंकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग"। जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषतः श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे।

वस्तुतः 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकतीं-ठुमकतीं हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगतः सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगतः समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उठान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

12

मन्तव्य

— डॉ. सागरमल जैन

पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है। वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं। लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षो में पूर्ण हुई। जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है। प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है। इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं। प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं। उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं। इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है। यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं। अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी। इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है। प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

13

मन्तव्य

विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं। विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं। सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं। प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं। समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं। क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं। क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं। ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वाग्देवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ्मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है। आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है। इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है। इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्मयी साधना में समर्पिता करती

हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

— *पं. जयनंदन झा,*
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है । साधक की साधना जब उच्च्व कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है । राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है ।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है । परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी ।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये । इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा । इति । शुभम् ।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

— डॉ. अखिलेशकुमार राय

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रैल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)

— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वय ने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998

जयनारायण व्यास विश्व विद्याल
जोध

738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

— भागचन्द जैन कवाड
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्‌वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड़,
किशनगढ़ शहर (राज.)

दर्पण

19

दर्पण

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

'विश्वपूज्य:'
जीवन-दर्शन

ॐ

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा। गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं – 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी ओर उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था!

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है· जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र

---

1 अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

माता संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा - इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थें, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की । तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया । कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया ।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया । 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से ।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया । उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए । पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है । उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है । इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया ।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है । उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं । उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है । लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं । प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं । उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है ।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं । पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है –

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर ।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार ॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है । साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है ।

---

1 जिन - भक्ति - मजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा- सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥'' [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है। साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है। इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

''प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥'' [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय-वीणा पर अनुगुंजित है। 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान् - मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे। उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 2 आनन्दघन ग्रन्थावली
3 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे ॥" [1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी ॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी ॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना ॥" [2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो ॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो ॥" [3]

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1
2 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1
3 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे ॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रुद्र है करम संहारा रे ॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे ॥'[1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है।[2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72

2 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी ॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री ॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी ॥' **आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५**

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है । उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है — आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म) । यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है । सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है । उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है —

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना ।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना ॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन. ।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि. ॥
पुरुषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि. ।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि. ॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश ।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि. ॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है ।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया । इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है । कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है । कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं । शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72

कथाओं को सुगम बना दिया है।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है। उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है। जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है। विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है। यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है। उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है – वह है – अनन्वय अलंकार – अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्वर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(पंचम खण्ड)

1. धर्मशास्त्र का सार

कपिलः प्राणिनां दया ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 2]
एवं [भाग 7 पृ. 70]
– *तीत्थोगाली* 22 *कल्प*

प्राणियों पर दया (करुणा भाव) रखो ।

2. आयुर्वेद शास्त्र का सार

जीर्णे भोजनमात्रेयः ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 2]
एवं [भाग 7 पृ. 70]
– *तीत्थोगाली* 22 *कल्प*

पहले खाए हुए का पाचन होने के बाद ही खाओ अर्थात् पूर्व का अन्न हजम न हो तबतक नहीं खाना चाहिए ।

3. कामशास्त्र का सार

पाञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम् ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 2]
एवं [भाग 7 पृ. 70]
– *तीत्थोगाली* 22 *कल्प*

स्त्रियों पर कठोर मत बनो, कोमल रहो ।

4. नीतिशास्त्र का सार

बृहस्पतिरविश्वासः ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 2]
एवं [भाग 7 पृ. 70]
– *तीत्थोगाली* 22 *कल्प*

कहीं पर भी विश्वास मत रखो ।

5. आहारोद्देश्य

वेयणवेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाण वत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 9]

— *उत्तराध्ययन 26/32*

छः कारणों से आहार करता हुआ साधु प्रभु आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। वे कारण ये हैं -

(१) क्षुधावेदनीय को शान्त करने के लिए (२) वैयावृत्य — सेवा करने के लिए (३) ईर्यासमिति का पालन करने के लिए (४) संयम पालन करने के लिए (५) प्राण-रक्षा के लिए और (६) धर्म-चिन्तन करने के लिए।

6. स्वाध्याय तप

सज्झायं तु तओ कुज्जा सव्वभावविभावणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 10]

— *उत्तराध्ययन 26/36*

समस्त भावों का प्रकाशक (अभिव्यक्त करनेवाला) स्वाध्याय तप करे।

7. श्रमण-रात्रिचर्या

पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइए झाणं झियायई ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 10]

— *उत्तराध्ययन 26/43*

संयमी साधक प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में निद्रा-त्याग और चौथे प्रहरमें पुनः स्वाध्याय करें।

8. सबमें एक

हत्थिस्स य कुंथुस्स समे चेव जीवे ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 38]

— *भगवतीसूत्र 7/8/2*

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुंथुआ-दोनों में आत्मा एक समान है।

9. व्यावहारिक-अव्यावहारिक

जे से पुरिसे देइ वि सन्नवेइ वि से पुरिसे ववहारी ।
जे से पुरिसे णो देति णो सन्नवेइ सेणं अववहारी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 38]

— ***राजप्रश्नीय 185***

जो व्यापारी ग्राहक को अभीष्ट वस्तु देता है और प्रीतिवचन से संतुष्ट भी करता है, वह व्यवहारी है। जो न देता है और न प्रीति वचन से संतुष्ट ही करता है; वह अव्यवहारी है।

10. वन्दना

जत्थेव धम्मायरियं पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 39-40]

— ***राजप्रश्नीय 191***

जहाँ कहीं भी अपने धर्माचार्य को देखें, वहीं पर उन्हें वन्दना-नमस्कार करना चाहिए।

11. जीवन अरमणीय नहीं !

माणं तुमं पएसी ! पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता
पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 40]

— ***राजप्रश्नीय 194-199***

हे राजन् ! तुम जीवन के पूर्वकाल में रमणीय होकर उत्तरकाल में अरमणीय मत बन जाना।

12. साधक-चर्या

साता गारवणि हुए, उवसंते णिहे चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 59]
एवं [भाग 6 पृ. 1406]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/18***

साधक सुख-सुविधा की भावना से अनपेक्ष रहकर, उपशान्त एवं दंभरहित होकर विचरे।

13. प्रत्याख्यान

पच्चक्खाणेणं इच्छा निरोहं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 103]

— *उत्तराध्ययन 29/13*

प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) से इच्छा-निरोध होता है ।

14. प्रत्याख्यान-लाभ

पच्चक्खाणेणं आसव दाराइं निरुंभइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 103]

— *उत्तराध्ययन 29/13*

प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) से जीव आश्रव द्वार का निरोध करता है ।

15. तपश्चरण-प्रयोजन

राग-द्वेषौ यदि स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम् ?
तावेव यदि न स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम् ? ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 104]

— *पंचाशक सटीक 5 विव.*

तप करने पर भी यदि राग-द्वेष बने रहें, राग-द्वेष की मात्रा में न्यूनता न हो, तो उस तपश्चरण से भी क्या लाभ ? और यदि राग-द्वेष सर्वथा निर्मूल हो चुके हैं तो फिर ऐसी स्थिति में भी तप करने का क्या औचित्य ? वस्तुत: तपश्चरण के पीछे राग-द्वेष न्यून हो, यही उद्देश्य रहा हुआ है ।

16. प्रतिक्रमण

स्वस्थानाद् यत् परं स्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः ।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥
क्षायोपशमिकाद् भावा-दौदयिकस्य वशंगतः ।
तत्रापि च स एवार्थः प्रतिकूलगमात् स्मृतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 261]

— *आवश्यक - 4*

प्रमादवश अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान-हिंसा आदि में गई हुई आत्मा का लौटकर अपने स्थान-आत्मगुणों में आ जाना 'प्रतिक्रमण' है तथा क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भाव में गई हुई आत्मा का पुन: मूल भाव में आ जाना 'प्रतिक्रमण' है।

17. विनय बिन विद्या

विणया हीआ विज्जा, दिंति फलं इह परे अ लोगम्मि।
न फलंति विणया हीणा, सस्साणि व तोयहीणाणि॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 267]
एवं भाग 6 पृ. 1089
— *बृह. भाष्य 5203*

विनयपूर्वक पढ़ी गई विद्या, लोक-परलोक में सर्वत्र फलवती होती है। विनयहीन विद्या उसीप्रकार निष्फल होती है, जिसप्रकार जल के बिना धान्य की खेती।

18. मन्त्र-सिद्धि

आयरिय नमुक्कारेण, विज्जामंता य सिज्झंति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 267]
— *आवश्यक निर्युक्ति 2/1110*

आचार्य भगवन्त को नमस्कार करने से विद्या-मंत्र सिद्ध होते हैं।

19. भक्ति से कर्मक्षय

भत्तीइ जिनवराणं खिज्जंती पुव्वसंचिआ कम्मा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 267]
— *आवश्यक निर्युक्ति 2/1110*

श्री जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति से पूर्व संचित कर्म क्षय होते हैं।

20. प्रतिक्रमण क्यों ?

पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे य पडिक्कमणं।
असद्दहणे य तहा, विवरीय परूवणाए य॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 271]

— *आवश्यकनिर्युक्ति 1268*

हिंसादि निषिद्ध कार्य करने का, स्वाध्याय प्रतिलेखनादि कार्य नहीं करने का, तत्त्वों में अश्रद्धा उत्पन्न होने का एवं शास्त्रविरुद्ध प्ररुपणा करने का प्रतिक्रमण किया जाना चाहिए।

21. क्षमापना, प्राणी मात्र से

सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहिय नियचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, अहयंपि खमामि सव्वेसिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 317]

— *संस्तारक प्रकीर्णक 105*

धर्म में स्थिर चित्त होकर मैं सद्भावपूर्वक सर्व जीवों से अपने अपराधों की क्षमा माँगता हूँ और उनके सब अपराधों को मैं भी सद्भावपूर्वक क्षमा करता हूँ।

22. क्षमापना

सव्वस्स समण संघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 317-1358]

— *मरणसमाधि-प्रकीर्णक 336*

मैं नतमस्तक होकर समस्त पूज्य श्रमण संघ से अपने सर्व अपराधों की क्षमा माँगता हूँ और उनके प्रति मैं भी क्षमा भाव रखता हूँ।

23. प्रतिक्रमण-लाभ

पडिक्कमणेणं वयच्छिद्दाइं पिहेइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 318]

— *उत्तराध्ययन 29/13*

प्रतिक्रमण से जीव व्रत के छिद्रों को रोक देता है।

24. कच्छपवत् साधक

कुम्मो इव गुत्तिंदिए अल्लीण पल्लीणे चिट्ठइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 357]

— *भगवतीसूत्र 25/7*

साधक कछुए की भाँति समस्त इन्द्रियों एवं अंगोपांग को समेट करके रहे ।

25. ज्ञानी

नाणी न विणा णाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 361]

— *निशीथभाष्य 75*

ज्ञान के बिना कोई ज्ञानी नहीं हो सकता ।

26. इन्द्रिय-निग्रह

सद्देसु य रूवेसु य, गंधेसु, रसेसु तह फासेसु ।
न वि रज्जइ न वि दुस्सइ, एसा खलु इंदिअप्पणिही ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 381]

— *दशवैकालिक निर्युक्ति 295*

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श में जिसका चित्त न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता है, उसीका इन्द्रियनिग्रह प्रशस्त होता है ।

27. कुमार्गगामी इन्द्रियाँ

जस्स खलु दुप्पणिहिया-णिंदियाइं तवं चरंतस्स ।
सो हीरइ असहीणेहिं सारही वा तुरंगेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 382]

— *दशवैकालिकनिर्युक्ति 298*

जिस साधक की इन्द्रियाँ कुमार्गगामिनी हो गई हैं; वह दुष्ट घोड़ों के वश में पड़े सारथि की तरह उत्पथ में भटक जाता है ।

28. गजस्नान

जस्स वि य दुप्पणिहिआ, होंति कसाया तवं चरंतस्स ।
सो बाल तवस्सी वि व, गयण्हाण परिस्समं कुणइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 382]

— *दशवैकालिक निर्युक्ति 300*

जिस तपस्वी ने कषायों को निगृहीत नहीं किया, वह बाल तपस्वी है। उसके तप रूपमें किए गए सब कायकष्ट गजस्नान की तरह व्यर्थ है।

29. ज्ञानावरणीय बंध

ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव, निंदा-प्रद्वेष-मत्सरैः ।
उपघातैश्च विघ्नैश्च, ज्ञानघ्नं कर्मबध्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 389]
— *उत्तराध्ययन पाइ टीका 2 अ.*

ज्ञान व ज्ञानियों की निंदा, द्वेष, ईर्ष्या एवं उनका नाश करने से और उनमें विघ्न डालने से ज्ञानावरणीय कर्म बंधता है।

30. गुण-दोष

जो उ गुणो दोसकरो, ण सो गुणो दोसमेव तं जाणे ।
अगुणो वि होति उ गुणो, विणिच्छओ सुंदरो जस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 398]
— *निशीथ भाष्य 5877*
— *बृहदावश्यक भाष्य 4052*

जो गुण, दोष का कारण है, वह वस्तुतः गुण होते हुए भी दोष ही है और वह दोष भी गुण है; जिसका परिणाम सुन्दर है अर्थात् जो गुण का कारण है।

31. पञ्च पवित्र सिद्धान्त

पंचैतानि पवित्राणि, सर्वेषां धर्मचारिणाम् ।
अहिंसासत्यमस्तेयं, त्यागो मैथुनवर्जनम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 473]
— *हारिभद्रीय अष्टक 13/2*

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और मैथुनत्याग-ये पाँच सभी धर्मचारियों के लिए पवित्र हैं। अतः इनका पूर्ण आचरण करना चाहिए।

32. पञ्च प्रमाद

मज्जं विसय कसाया निद्दा विगहा य पंचमी भणिया ।
इअ पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 479]

— ***उत्तराध्ययन निर्युक्ति 180***

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-यह पाँच प्रकार का प्रमाद है जो जीव को संसार में गिराता है।

33. एकान्त सुख, मोक्ष

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 482]

— ***उत्तराध्ययन 32/2***

ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान और मोह के विसर्जन से तथा राग-द्वेष के क्षय से आत्मा एकान्त सुख रूप मोक्ष को प्राप्त करती है।

34. समाधिकामी तपस्वी

समाहि कामे समणे तवस्सी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 483]

— ***उत्तराध्ययन 32/4***

जो श्रमण समाधि की कामना करता है, वही तपस्वी है।

35. मोह-तृष्णा

जहा य अंडप्पभवा बलागा,
अंडं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहायतणं खु तण्हा,
मोहं च तण्हायतणं वयंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 483]

— ***उत्तराध्ययन 32/6***

जिसप्रकार बलाका (बगुली) अंडे से उत्पन्न होती है और अंडा बलाका से; इसीप्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

36. शुद्ध मितभुक्

आहारमिच्छे मितमेसणिज्जं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 483]

— *उत्तराध्ययन 32/2*

आत्मार्थी साधक परिमित और शुद्ध आहार की इच्छा करे ।

37. गुरु-वृद्ध-सेवा

तस्सेस मग्गो गुरूविद्ध सेवा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 483]

— *उत्तराध्ययन 32/3*

व्यवहार धर्म का यह मार्ग है कि गुरु और वृद्धों की सेवा करो ।

38. मोक्ष-मार्ग

तस्सेस मग्गो गुरूविद्ध सेवा,
विवज्जणा बाल जणस्स दूरा ।
सज्झाय एगंत निसेवणा य,
सुत्तत्थ संचिंतणाया धिती य ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 483]

— *उत्तराध्ययन 32/3*

गुरु और वृद्धजनों (स्थविर मुनियों) की सेवा करना, अज्ञानी जनों के संपर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का सम्यक् चिंतन करना तथा धैर्य रखना-ये मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं ।

39. अतिमात्रा में रस-वर्जन

रसापगामं न निसेवियव्वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— *उत्तराध्ययन 32/10*

ब्रह्मचारी को अधिक मात्रा में रसों का सेवन नहीं करना चाहिए ।

40. काम-भावना

दित्तं च कामा समभिद्दवंति,
दुमं जहा सादुफलं व पक्खी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]
— *उत्तराध्ययन 32/10*

उद्दीप्त पुरुष के निकट कामभावनाएँ वैसे ही चली आती हैं। जैसे-स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष के पास पक्षी चले आते हैं।

41. वास्तविक दुःख

दुक्खं च जाई मरणं वयंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]
— *उत्तराध्ययन 32/7*

बार-बार जन्म और बार-बार मरण, यही वस्तुतः दुःख हैं।

42. जन्म-मरण-मूल

कम्मं च जाई मरणस्स मूलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]
— *उत्तराध्ययन 32/7*

कर्म ही जन्म-मरण का मूल है।

43. मोह से कर्म

कम्मं च मोहप्पभवं वदंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]
— *उत्तराध्ययन 32/7*

कर्म, मोह से ही उत्पन्न होते हैं।

44. रस, उद्दीपक

पायंरसा दित्तिकरा नराणां ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]
— *उत्तराध्ययन 32/10*

रस प्रायः मनुष्यों की धातुओं को उत्तेजित करते हैं अर्थात् उन्माद बढ़ानेवाले होते हैं ।

45. कर्मबीज

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— ***उत्तराध्ययन 32/7***

राग और द्वेष, ये दो ही कर्म के बीज हैं ।

46. मोहक्षय, दुःखक्षय

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— ***उत्तराध्ययन 32/8***

जिसे मोह नहीं होता, उसका समग्र दुःख नष्ट हो जाता है ।

47. तृष्णा-त्याग

मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— ***उत्तराध्ययन 32/8***

जिसके हृदय में तृष्णा नहीं है उसका समग्र मोह नष्ट हो जाता है ।

48. निर्लोभ

तण्हा हया जस्स न होइ लोहो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— ***उत्तराध्ययन 32/8***

जिसमें लोभ नहीं होता, उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है ।

49. अपरिग्रह

लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 484]

— ***उत्तराध्ययन 32/8***

जिसके पास कुछ नहीं है, उसका लोभ नष्ट हो जाता है ।

50. ब्रह्मचर्यरत

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थी जणस्सारिय झाणजोग्गं, हियं सया बंभचेररयाणं ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 485]

– *उत्तराध्ययन 32/15*

वे साधक जो ब्रह्मचर्य की साधना में लीन हैं, उनके लिए स्त्रियों को राग दृष्टि से न देखना, न उनकी अभिलाषा करना, न तन में उनका चिन्तन करना और न ही उनकी प्रशंसा करना-ये सब सदा के लिए हितकर है।

51. ब्रह्मचारी-निवास

एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे,
न बंभचारिस्स खमो निवासो।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 485]

– *उत्तराध्ययन 32/13*

जिस घरमें स्त्री रहती हो वहाँ ब्रह्मचारी का रहना उचित नहीं है।

52. जितेन्द्रिय

न राग सत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 485]

– *उत्तराध्ययन 32/12*

जिसप्रकार उत्तम जाति की औषधि रोग को दबा देती है या नष्ट कर देती है और पुन उभरने नहीं देती, उसीप्रकार जितेन्द्रिय पुरुष के चित्त को राग-द्वेष रूपी कोई शत्रु सता नहीं सकता।

53. प्रकाम भोजन-वर्जन

जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे,
समारूओ नोवसमं उवेइ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो,
न बंभचारिस्स हियाय कस्सई ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 485]

— *उत्तराध्ययन 32/11*

जैसे प्रचुर इंधनवाले वन में लगी हुई और प्रचण्ड पवन के झोकों से प्रेरित दावाग्नि शांत नहीं होती, वैसे ही प्रकामभोजी अर्थात् सरस एवं अधिक मात्रा में भोजन करनेवाले साधक की इन्द्रियाग्नि (कामाग्नि) शांत नहीं होती। अतः किसी भी ब्रह्मचारी के लिए प्रकाम भोजन कदापि श्रेयस्कर नहीं है।

54. काम, किंपाक

जहा य किंपाग फला मणोरमा,
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।
ते खुद्दए जीविए पच्चमाणा,
एओवमा कामगुणा विवागे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 486]

— *उत्तराध्ययन 32/20*

जैसे किंपाक फल रूप, रंग और रस की दृष्टि से प्रारंभ में देखने और खाने में तो अत्यन्त मधुर और मनोरम लगते हैं, किंतु बाद में जीवन के नाशक हैं; वैसे ही काम-भोग भी प्रारंभ में बड़े मीठे और मनोहर प्रतीत होते हैं; किन्तु विपाककाल (अन्तिम परिणाम) में अत्यन्त दुःखप्रद सिद्ध होते हैं।

55. एकान्त प्रशस्त

विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 486]

— *उत्तराध्ययन 32/16*

मुनि के लिए एकान्तवास प्रशस्त होता है।

56. दुःख-मूल

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 486]

— *उत्तराध्ययन 32/19*

समग्र संसार में जो भी दुःख हैं, वे सब कामासक्ति के कारण ही हैं।

57. काम-विजय

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुहुत्तरा चेव भवंति सेसा।
जहा महासागर मुत्तरित्ता, नदी भवे अवि गंगासमाणा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 486]

— *उत्तराध्ययन 32/18*

जो मनुष्य स्त्री-विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है उसके लिए शेष समस्त आसक्तियाँ वैसे ही सुगम हो जाती हैं। जैसे महासागर को पार पा जानेवाले के लिए गंगा जैसी महानदी को पार करना आसाना होता है।

58. राग-द्वेष के हेतु

रागस्स हेउं समणुन्नमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 487]

— *उत्तराध्ययन 32/23*

मनोज्ञ शब्दादि राग के हेतु होते हैं और अमनोज्ञ द्वेष के हेतु।

59. रूपासक्ति

रूवेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे से जह वा पयंगे,
आलोगलोले समुवेइ मच्चुं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 487]

— *उत्तराध्ययन 32/24*

रूप के मोह में तीव्र अनुरक्ति रखनेवाला प्राणी असमय में विनाश के गर्त में जा गिरता है। जैसे-दीपक की चमकती लौ के राग में आतुर बना पतंगा मृत्यु को प्राप्त होता है।

60. रूप-वीतराग

चक्खुस्स रुवं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो उ जो तेसु स वीयरागो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 487]

— *उत्तराध्ययन 32/22*

चक्षु का विषय रूप है। जो रूप राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में समान रहता है; वही वीतराग होता है।

61. मनोनिग्रह

जे इंदियाणं विसया मणुन्ना,
न तेसु भावं निसिरे कयाइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 487]

— *उत्तराध्ययन 32/21*

इन्द्रियों के सुमनोज्ञ विषयों में मन को कभी भी संलग्न न करें।

62. रूप में अतृप्त

रूवे अत्तित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेणं दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 488-489]

— *उत्तराध्ययन 32/29*

जो रूप में अतृप्त होता है, उसकी आसक्ति बढ़ती ही जाती है। इसलिए उसे संतोष नहीं होता। असंतोष के दोष से दु:खित होकर वह दूसरे की सुंदर वस्तुओं को लोभी बनकर चुरा लेता है।

63. माया-मृषा

मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 489-490]

— *उत्तराध्ययन 32/30-43*

लोभ के दोष से मनुष्य का माया सहित झूठ बढ़ता है।

64. चोरी

लोभाविले आययई अदत्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 489]

— *उत्तराध्ययन 32/29*

व्यक्ति लोभ से कलुषित होकर चोरी करता है।

65. दुःखदायी कर्म

पदुट्ठचित्तो अ चिणाइ कम्मं ।
जं स पुणो होइ दुहं विवागे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 489]

— *उत्तराध्ययन 32/46*

आत्मा प्रदुष्ट चित्त (राग-द्वेष से कलुषित) होकर कर्मों का संचय करती है। वे कर्म परिणाम में बहुत दु.खदायी होते हैं।

66. असत्य दुःखान्त

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य पओगकाले य दुही दुरंते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 489]

— *उत्तराध्ययन 32/31*

असत्यभाषी पुरुष झूठ बोलने से पहले और उसके बाद तथा झूठ बोलने के समय भी दु·खी होता है। उसका अन्त भी दु.खद होता है।

67. शब्द-परिग्रह में अतृप्ति

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण सन्निओगे।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?
संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— *उत्तराध्ययन 32/41*

शब्द के प्रति अनुराग और परिग्रह (ममत्व) के कारण मनुष्य उसके उत्पादन, संरक्षण और प्रबन्ध की चिंता करता है और उसका व्यय तथा वियोग होता है, अत: इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और तो क्या ? उसके उपभोग काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती।

68. स्वार्थवश जीवपीड़ा

सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— *उत्तराध्ययन 32/40*

मनोज्ञ शब्द की तृष्णा के वशीभूत अज्ञानी पुरुष अपने स्वार्थ के लिए चराचर जीवों की हिंसा करता है। उन्हें कई प्रकार से परितप्त और पीड़ित करता है।

69. शब्द-वीतराग

सोयस्स सद्दं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— *उत्तराध्ययन 32/35*

श्रोत्र का विषय शब्द है। जो शब्द राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा है। जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में समान रहता है, वही वीतराग है।

70. सतृष्ण आश्रयहीन

अदत्ताणि समाययंतो ।
सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— *उत्तराध्ययन 32/44*

चोरी में प्रवृत्त और शब्दादि में अतृप्त हुई आत्मा दु:ख पाती है तथा उसका कोई भी संरक्षक नहीं होता।

71. शब्दासक्त-अकाल मृत्यु

सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं ।
अकालियं पावइ से विणासं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— *उत्तराध्ययन 32/37*

जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्रासक्ति रखता है वह रागातुर अकाल में ही विनष्ट हो जाता है।

72. निर्लिप्त आत्मा

न लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पुक्खरिणी पलासं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]
— *उत्तराध्ययन 32/47*

जो आत्मा विषयों के प्रति अनासक्त है, वह संसार में रहती हुई भी उसमें लिप्त नहीं होती। जैसे पुष्करिणी के जल में रहा हुआ पलाश-कमल।

73. असंतुष्ट

सद्दे अत्तित्ते य परिग्गहम्मि ।
सत्तो व सत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]
— *उत्तराध्ययन 32/42*

शब्द आदि विषयों में अतृप्त और परिग्रह में आसक्त रहनेवाली आत्मा को कभी संतोष नहीं होता।

74. वीतराग कौन ?

समो य जो तेसु स वीयरागो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]
— *उत्तराध्ययन 32/87*

जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि विषयों में सम रहता है, वह वीतराग है।

75. गंध-वीतराग

घाणस्स गंधं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— ***उत्तराध्ययन** 32/48*

घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध है। जो गंध राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ गंध, दोनों में समदृष्टि रखता है, वही वीतराग होता है।

76. समाया मृषा-वृद्धि

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 490]

— ***उत्तराध्ययन** 32/43*

तृष्णा से अभिभूत-चौर्य-कर्म में प्रवृत्त, शब्दादि विषयों तथा परिग्रह में अतृप्त व्यक्ति लोभ-दोष से माया सहित मृषा (कपट प्रधान झूठ) की वृद्धि करता है, तथापि वह दुःख से मुक्त नहीं होता!

77. गंधासक्ति

गन्धाणुरत्तस्स नरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 491]

— ***उत्तराध्ययन** 32/58*

सुगन्ध में अनुरक्त मनुष्य को जरा भी सुख कैसे और कब हो सकता है?

78. रसासक्त-अकाल मृत्यु

रसेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 491]

— ***उत्तराध्ययन** 32/63*

जो मनुष्य रस (स्वाद) में शीघ्र आसक्त होकर असंयमपूर्वक उसका सेवन करता है वह असमय में ही विनाश को प्राप्त हो जाता है।

79. रसना-वीतराग

जिब्भाए रसं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 491]

— *उत्तराध्ययन 32/61*

रसनेन्द्रिय का विषय रस है, जो रस राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में समदृष्टि रखता है, वही वीतराग होता है।

80. त्वचेन्द्रियासक्ति से विनाश

फासेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 492]

— *उत्तराध्ययन 32/76*

जो मनोज्ञ स्पर्शनेन्द्रिय के भोगों में तीव्र आसक्ति रखता है वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त हो जाता है।

81. स्पर्श-वीतराग

कायस्स फासं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 492]

— *उत्तराध्ययन 32/74*

स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों में समदृष्टि रखता है, वही वीतराग कहलाता है।

82. रागात्मा

एविंदियत्था य मणस्स अत्था,
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो ।
ते चेव थोवंपि कयाइ दुक्खं,
न वीयरागस्स करेंति किंचि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 493]
— *उत्तराध्ययन 32/100*

मन एवं इन्द्रियों के विषय रागात्मा को ही दुःख के हेतु होते हैं। वीतराग को तो वे किंचित् मात्र भी दुःखी नहीं कर सकते।

83. मोह-विकार

न कामभोगा समयं उवेंति,
न यावि भोगा विगइं उवेंति ।
जे तप्पदोसी य परिग्गहीय,
सो तेसु मोहा विगइं उवेति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 493]
एवं [भाग 6 पृ. 457]
— *उत्तराध्ययन 32/101*

काम-भोग-शब्दादि विषय न तो स्वयं समता के कारण होते हैं और न विकृति के ही, किंतु जो उनमें राग या द्वेष करता है वह उनमें मोह से राग-द्वेष रूप विकार को उत्पन्न करता है।

84. इन्द्रियवशी

आवज्जई इन्दियचोरवस्से ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 494]
— *उत्तराध्ययन 32/104*

इन्द्रिय रूपी चोर के वशीभूत आत्मा संसार में ही भ्रमण करती है।

85. तृष्णा क्षीण

एवं ससंकप्पविकप्पणासु संजायइ समयमुवट्ठियस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 495]

— *उत्तराध्ययन 32/107*

राग-द्वेष आदि दोषों के हेतु इन्द्रियों के विषय नहीं है बल्कि व्यक्ति के अपने ही राग-द्वेषादिरूप संकल्प-विकल्प ही कारणभूत है। यदि व्यक्ति के मनमें ऐसी विरक्ति या समता जागृत हो जाए तो उस समता से उसकी काम-भोगों की बढ़ी हुई तृष्णा (राग-द्वेषादि विकार) क्षीण हो जाती है।

86. बाल, अशरणभूत

न सरणं बाला पंडितमाणिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 524]

— *सूत्रकृतांग 1/1/4/1*

अपने आपको पंडित माननेवाले बालजन (अज्ञानी) शरणरहित होते हैं।

87. मुनि की तटस्थ यात्रा

अणुक्कसे अप्पलीणे, मज्झेण मुणि जावते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 525]

— *सूत्रकृतांग 1/1/4/2*

उत्कर्ष रहित और अनासक्त मुनि मध्यस्थ (तटस्थ) भाव से यात्रा करे।

88. काम, खुजली

नाति कंडूइ तं सेयं, अरूयस्सा वरज्झती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 546]

— *सूत्रकृतांग 1/3/3/13*

घाव को अधिक खुजलाना ठीक नहीं है, क्योंकि खुजलाने से घाव अधिक फैलता है।

89. अजातशत्रु

जेणऽण्णो ण विसज्झेज्जा तेण तं तं समायरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 547]

— *सूत्रकृतांग 1/3/3/19*

ऐसा सम्यक् अनुष्ठान का आचरण करें जिससे दूसरा कोई व्यक्ति अपना विरोधी न बने ।

90. सिद्धि-सूत्र

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अण्णहवे तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 549]
एवं [भाग 7 पृ. 412]

— *भगवतीसूत्र 2/5*

सत्संग से धर्मश्रवण, धर्मश्रवण से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्त्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान (सांसारिक पदार्थों से विरक्ति), प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव (नवीन कर्म का अभाव), अनाश्रव से तप, तप से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश, पूर्वबद्ध कर्म नाश से निष्कर्मता (सर्वथा कर्मरहित स्थिति) और निष्कर्मता से सिद्धि प्राप्त होती है ।

91. परिग्रह-वटवृक्ष

लोभ कलिकसाय महक्खंधो,
चिंतासयनिचिय विपुलसालो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 553]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/17*

परिग्रह रूपी वृक्ष के तने लोभ, क्लेश और कषाय हैं और उसकी चिंतारूपी सैकड़ों ही सघन और विस्तीर्ण शाखाएँ हैं ।

92. ममता

मूर्च्छा परिग्रहः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 553]

— *तत्त्वार्थ 7/12*

मूर्च्छा (ममता) ही परिग्रह है ।

93. त्रिविध-परिग्रह

तिविहे परिग्गहे पन्नते । तं जहा-कम्म परिग्गहे, सरीर परिग्गहे, बाहिरगभंडमत्तोवगरण परिग्गहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 553]

— *भगवतीसूत्र 18/7/10*

परिग्रह तीन प्रकार का है - कर्म परिग्रह, शरीर परिग्रह और बाह्य भण्ड-मात्र-उपकरण परिग्रह ।

94. परिग्रहः अर्गला

मोक्ख वरमोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 553-555]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/17*

उत्तम मोक्ष-मार्ग रूप मुक्ति के लिए यह परिग्रह अर्गला रूप है ।

95. देव भी अतृप्त

देवा वि सइंदगा न तत्तिं न तुट्ठिं उवलभंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

देवता और इन्द्र भी भोगों से न कभी तृप्त होते हैं और न संतुष्ट ।

96. परिग्रहः जाल

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो
अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

समूचे संसार में परिग्रह के समान प्राणियों के लिए दूसरा कोई जाल एवं बंधन नहीं है ।

97. परिग्रह के विविध रूप

अणंत असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं
असासयं पावकम्मणेम्मं ।

अवकिरियव्वं विणासमूलं वहबंध
परिकिलेस बहुलं अणंत संकिलेसं कारणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

– *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

यह परिग्रह अनंत है, यह किसी को शरण देनेवाला नहीं है । यह अस्थिर, अनित्य और अशाश्वत है, पाप-कर्मों की जड़ है, विनाश का मूल है, वध-बंधन और संक्लेश से व्याप्त है और अनन्त संक्लेश इसके साथ जुड़े हुए हैं ।

98. दुःखों का घर

सव्वदुक्ख संनिलयणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

– *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

यह परिग्रह समस्त दुःखों का घर है ।

99. मन्दमति

संचिणंति मंदबुद्धी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

– *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

मंदबुद्धि मनुष्य परिग्रह का संचय करते हैं ।

100. परिग्रहासक्त

अत्ताणा अणिग्गहिया करेंति कोहमाणमायालोभे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

– *प्रश्नव्याकरण 1/5/19*

शरणरहित परिग्रहासक्त व्यक्ति मन और इन्द्रियनिग्रह से रहित होकर क्रोध, मान, माया और लोभ करते हैं ।

101. परिग्रह-विपाक

परलोगम्मि य णट्ठा तमं पविट्ठा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/20*

परिग्रहासक्त प्राणी परलोक में नष्ट-भ्रष्ट होते हैं और अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट होते हैं।

102. परिग्रह-पाप का कटु फल

एसो सो परिग्गहस्स फलविवागो इहलोईओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 555]

— *प्रश्नव्याकरण 1/5/20*

परिग्रह का उभयलोक सम्बन्धी यह फल विपाक अल्प-सुख और अधिक दु:ख देनेवाला है और अत्यन्त भयानक है।

103. बाह्य निर्ग्रन्थता वृथा

चित्तेऽन्तर्ग्रन्थगहने बहिर्निर्ग्रंथता वृथा ।
त्यागात्कंचुकमात्रस्य, भुजगो न हि निर्विषः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/4*

यदि चित्त अंतरंग परिग्रह से व्याकुल हो तो बाह्य निर्ग्रन्थता निरर्थक है। केंचुली छोड़ने मात्र से सर्प विषरहित नहीं हो जाता।

104. परिग्रहः ग्रह

परिग्रहग्रहः कोऽयं विडम्बितजगत्त्रयः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/1*

न जाने परिग्रह रूपी यह ग्रह कैसा है ? जिसने त्रिलोक को विडम्बित (पीड़ित) किया है।

105. त्रिलोकपूजित कौन ?

यस्त्यक्त्वा तृणवद् बाह्यमान्तरं च परिग्रहम् ।
उदास्ते तत्पदाम्भोजं, पर्युपास्ते जगत्त्रयी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/3*

जो तृण के समान बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर सदा उदासीन रहते हैं, तीनों लोक उनके चरण-कमलों की सेवा में रहते हैं।

106. स्पृही की दृष्टि में: जगत्

मूर्च्छाच्छन्नधियां सर्वं, जगदेव परिग्रहः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/8*

मूर्च्छा से आच्छादित बुद्धिवाले जीवों के लिए समस्त जगत् परिग्रह रूप हैं।

107. निस्पृही की दृष्टि में: जगत्

मूर्च्छया रहितानां तुः जगदेवापरिग्रहः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/8*

मूर्च्छा विहीन (ममता रहित) नि:स्पृही पुरुषों के लिए तीनों लोकों का ऐश्वर्य भी अपरिग्रह रूप है।

108. परिग्रहत्यागः कर्मक्षय

त्यक्ते परिग्रहे साधोः प्रयाति सकलं रजः ।
पालित्यागे क्षणादेव सरसः सलिलं यथा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 556]

— *ज्ञानसार 25/5*

जैसे पाल टूटते ही तालाब का सारा पानी क्षणभर में बह जाता है वैसे ही बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करते ही साधु के सारे पाप-कर्म क्षय हो जाते हैं।

109. श्रमण कौन ?

अपरिग्गह संवुडे य समणे, आरंभ परिग्गहातो विरते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 557]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/28*

जो ममत्व-भाव से रहित हैं, संवृतेन्द्रिय हैं और आरंभ-परिग्रह से विरत हैं, वे ही श्रमण होते हैं।

110. अहर्निश जागरुकता

अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सततं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 560]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

सुविहित श्रमण को दिन और रात निरन्तर सजग रहना चाहिए।

111. समभावी श्रमण

समे य जे सव्वपाणभूतेसु से हु समणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 560]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

जो समस्त प्राणियों पर समभाव रखता है, वही वास्तव में श्रमण है।

112. साधक कैसा हो ?

पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे........
आगासं विव णिरालंबे........ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 561-562]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

साधक को कमल-पत्र के समान निर्लेप और आकाश के समान निरावलम्ब होना चाहिए।

113. मुनिः भारण्ड पक्षी

भारण्डे चेव अप्पमत्ते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 562]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

मुनि भारण्ड पक्षी के समान सदा सजग रहता है।

114. निरपेक्ष मुनि

खग्गि विसाणव्वं एगजाते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 562]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

निर्ग्रन्थ मुनि गेंडे के सींग के समान अकेला होता है अर्थात् वह अन्य की अपेक्षा रखनेवाला नहीं होता है ।

115. जीवन-मरण से निरपेक्ष

निरवकंखे जीवियमरणासविप्पमुक्के ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 562]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

मुनि जीवन और मृत्यु की आशा-आकांक्षा से सर्वथा मुक्त होते हैं ।

116. शरदसलिलसम मुनिहृदय

सारयसलिलं सुद्ध हियये ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 562]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

मुनि शरत्कालीन जल के समान स्वच्छ हृदयवाला होता है ।

117. श्रुति-दमन

ण सक्का ण सोउं सद्दा, सोत्त विसयमागया ।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 563]

— *आचारांग 2/3/15/130*

यह शक्य नहीं है कि कानों में पड़नेवाले अच्छे या बुरे शब्द सुने न जाए, अत: शब्दों का नहीं, शब्दों के प्रति जगनेवाले राग-द्वेष का त्याग करना चाहिए ।

118. संवृतेन्द्रिय

पणिहि इंदिए चरेज्ज धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 564-565-566]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

संवृतेन्द्रिय होकर धर्म का आचरण करें ।

119. धर्माचरण

मणुन्नाऽमणुन्न सुब्भिदुब्भि-राग-दोसप्पणिहियप्पा साहू ।
मणवयण कायगुत्ते संवुडे पणिहि इंदिए चरेज्ज धम्मं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 564-566]

— *प्रश्नव्याकरण 2/10/29*

मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूप शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष वृत्ति का संवरण करनेवाला और मन-वचन-काया का गोपन करनेवाला मुनि संवृतेन्द्रिय होकर धर्म का आचरण करें ।

120. दृष्टि-दमन

ण सक्का रूवमदट्ठुं, चक्खू विसयमागतं ।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 565]

— *आचारांग 2/3/15/131*

यह शक्य नहीं है कि आँखों के सामने आनेवाला अच्छा या बुरा रूप न देखा जाए, अत: रूप का नहीं, किन्तु रूप के प्रति जाग्रत होनेवाले राग-द्वेष का त्याग करना चाहिए ।

121. गंध-दमन

णो सक्का ण गंधमग्घाउं, णासा विसयमागतं ।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 565]

— *आचारांग 2/3/15/132*

यह शक्य नहीं है कि नाक के समक्ष आई हुई सुगन्ध या दुर्गन्ध सूँघने में न आए, अत: गंध का नहीं; किंतु गंध के प्रति जगनेवाली राग-द्वेष की वृत्ति का त्याग करना चाहिए ।

122. रसना-दमन

ण सक्का रसमणासातुं, जीहा विसयमागतं ।
राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 566]
— *आचारांग 2/3/15/133*

यह शक्य नहीं है कि जीभ पर आया हुआ अच्छा या बुरा रस चखने में न आये; अत: रस का नहीं; किंतु रस के प्रति जगनेवाले राग-द्वेष का त्याग करना चाहिए ।

123. स्पर्श-दमन

णो सक्का ण फासं संवेदेतुं, विसयमागतं ।
राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 567]
— *आचारांग 2/3/15/134*

यह शक्य नहीं है कि शरीर से स्पर्श होनेवाले अच्छे या बुरे स्पर्श की अनुभूति न हो, अत: स्पर्श का नहीं; किंतु स्पर्श के प्रति जगनेवाले राग-द्वेष का त्याग करना चाहिए ।

124. परिग्रहः महाभय

एतदेवेगेसिं महब्भयं भवति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 567]
— *आचारांग 1/5/2/154*

यह परिग्रह ही परिग्रहियों के लिए महाभय का कारण होता है ।

125. विरत अणगार

एत्थ विरते अणगारे दीहरायं तितिक्खते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 568]
— *आचारांग 1/5/2/156*

परिग्रह से विरत अणगार क्षुधा-पिपासादि परिषहों को जीवनभर सहन करे ।

126. मौन-उपासना

एतं मोणं सम्मं अणुवासिज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 568]

— *आचारांग 1/5/2/57*

मुनि मौन की सदैव सम्यक् प्रकार से उपासना करें ।

127. बंध-मोक्षः स्वयं के भीतर

बंधपमोक्खो तुज्झऽज्झत्थेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 568]

— *आचारांग 1/5/2/155*

वस्तुत: बंध और मोक्ष हमारी आत्मा में ही है अर्थात् बंध-मोक्ष स्वयं के भीतर ही है ।

128. परम चक्षुष्मान् !

पुरिसा परमचक्खु ! विपरिक्कम ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 568]

— *आचारांग 1/5/2/155*

हे परम चक्षुष्मान् पुरुष ! तू पुरुषार्थ कर !

129. आत्मा ही अहिंसा

आया चेव अहिंसा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 612]

— *ओघनिर्युक्ति 754*

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है ।

130. अहिंसकत्व

अज्झप्प विसोहीए, जीवनिकाएहिं संथडे लोए ।
देसियमहिंसगतं, जिणेहिं तेलोक्कदंसीहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 612]

— *ओघनिर्युक्ति 747*

त्रिलोकदर्शी जिनेश्वर देवों का कथन है कि अनेकानेक जीवसमूहों से परिव्याप्त विश्व में साधक का अहिंसकत्व अन्तर में अध्यात्म विशुद्धि की दृष्टि से ही है, बाह्य हिंसा या अहिंसा की दृष्टि से नहीं।

131. ईर्यासमित साधक निष्पाप

उच्चालियम्मि पाए, ईरियासमियस्स संकमट्ठाए।
वावज्जेज्ज कुलिंगी, मरिज्जतं जोगमासज्जा॥
नय तस्स तन्निमित्तो, बंधो सुहुमो विदेसिओ समए।
अणवज्जो उपओगेण, सव्वभावेण सो जम्हा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 612]
— *ओघनिर्युक्ति 748-749*

कभी-कभार ईर्यासमित साधु के पैर के नीचे भी कीट-पतंगादि क्षुद्र प्राणी आ जाते हैं, परन्तु उक्त हिंसा के निमित्त से उस साधु को सिद्धान्त में सूक्ष्म भी कर्म-बन्ध नहीं बताया है; क्योंकि वह अन्तर में सर्वतोभावेन उस हिंसा-व्यापार से निर्लिप्त होने के कारण निष्पाप है।

132. प्रमत्त-अप्रमत्त

आया चेव अहिंसा, आया हिंसंति निच्छओ एसो।
जो होइ अप्पमत्तो, अहिंसओ हिंसओ इयरो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 612]
— *ओघनिर्युक्ति 754*

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही हिंसा है और आत्मा ही अहिंसा। जो प्रमत्त है, वह हिंसक है और जो अप्रमत्त है, वह अहिंसक।

133. हिंसा-वृत्ति

जो य पमत्तो पुरिसो, तस्स य जोगं पडुच्च जे सत्ता।
वा वज्जंते नियमा, तेसिं सो हिंसओ होइ॥
जे वि न वावज्जंती, नियमा तेसिं पि हिंसओ सोउ।
सावज्जो उपओगेण, सव्वभावेण सो जम्हा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 612]

— ***ओघनिर्युक्ति** 752-753*

जो प्रमत्त व्यक्ति है, उसकी किसी भी चेष्टा से जो भी प्राणी मर जाते हैं; वह निश्चित रूप से उन सबका हिंसक होता है, परन्तु जो प्राणी नहीं मारे गए हैं वह प्रमत्त व्यक्ति उनका भी हिंसक ही है; क्योंकि वह अन्तर में सर्वतोभावेन हिंसावृत्ति के कारण सावद्य है, पापात्मा है।

134. कर्म-निर्जरा-हेतु

जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहि समग्गस्स ।
सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थ विसोहिजुत्तस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 613]

— ***ओघनिर्युक्ति** 759*

जो यतनावान् साधक अन्तर (अध्यात्म) विशुद्धि से युक्त है और आगम विधि के अनुसार आचरण करता है, उसके द्वारा होनेवाली विराधना-हिंसा भी कर्म-निर्जरा का कारण है।

135. अबूझ

निच्छयमवलंबंता, निच्छयओ निच्छयं अयाणंता ।
नासंति चरणकरणं, बाहिर करणालसाकेइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 613]

— ***ओघनिर्युक्ति** 761*

जो निश्चय दृष्टि से सालम्बन का आग्रह तो रखते हैं, परन्तु वस्तुत: उसके सम्बन्ध में कुछ जानते-बुझते नहीं हैं, वे सदाचार की व्यवहार-साधना के प्रति उदासीन हो जाते हैं और इसप्रकार सदाचार को ही मूलत: नष्ट कर डालते हैं।

136. मात्र बाह्य हिंसा, हिंसा नहीं !

न य हिंसा मित्तेणं, सावज्जेणा विहिंसओ होइ ।
सुद्धस्स उ संपत्ती, अफला भणिया जिणवरेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 613]

— *ओघनिर्युक्ति 758*

केवल बाहर में दृश्यमान् पापरूप हिंसा से ही कोई हिंसक नहीं हो जाता। यदि साधक अन्दर में राग-द्वेष से रहित शुद्ध है, तो जिनेश्वर देवों ने उसकी बाह्य हिंसा को कर्म-बन्ध का हेतु न होने से निष्फल बताया है।

137. सहिष्णु

देहे दुक्खं महाफलं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 643]

— ***दशवैकालिक 8/27***

शारीरिक कष्टों को समतापूर्वक सहने से महाफल की प्राप्ति होती है।

138. विशिष्टात्मा सक्षम

अग्गं वणिएहिं आहियं, धारेंति राईणिया इहं।
एवं परमामहव्वया, अक्खाया उ सराइभोयणा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 645]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/3*

जिसप्रकार दूर-देशान्तर से व्यापारी द्वारा लाए हुए बहुमूल्य रत्नों को राजा लोग ही धारण कर सकते हैं इसीप्रकार तीर्थंकर द्वारा कथित रात्रि-भोजन त्याग के साथ पंच महाव्रतों को कोई विशिष्ट आत्मा ही धारण कर सकती है।

139. भोग, रोग

अद्दक्खू कामाइं रोगवं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 645]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/2*

सच्चे साधक की दृष्टि में कामभोग रोग के समान है।

140. संतीर्ण

जे विण्ण वणाहिऽज्झो सिया संतिण्णेहिं समं वियाहिया।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 645]

— *सूत्रकृतांग — 1/2/3/2*

जो साधक स्त्रियों से सेवित नहीं हैं, वे मुक्त पुरुषों के समान कहे गए हैं।

141. प्रबुद्ध

मरणं हेच्च वयंति पंडिता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 645]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/8*

प्रबुद्ध साधक ही मृत्यु की सीमा को पार कर अजर-अमर होते हैं।

142. कामासक्त मूर्च्छित

गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/8*

गृद्ध मनुष्य (अविवेकी मनुष्य) ही काम-भोगों में मूर्च्छित होते हैं।

143. निर्बल, खिन्न

नाइति वहति अबले विसीयति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/5*

निर्बल व्यक्ति भार वहन करने में असमर्थ होकर मार्ग में ही खिन्न होकर बैठ जाता है।

144. जीवनसूत्र

न य संखयमाहु जीवियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/2/21*

जीवन-सूत्र टूट जाने के बाद पुनः नहीं जुड़ पाता है।

145. कामेच्छु क्या न करें ?

कामी कामे ण कामए, लद्धे वावि अलद्ध कण्हुई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/6*

कामी काम-भोगों की कामना न करे, प्राप्त भोगों को भी अप्राप्तवत् कर दे अर्थात् उपलब्ध भोगों के प्रति भी नि:स्पृह रहें ।

146. आत्मानुशासन

मा पच्छ असाहुया भवे,
अच्चे ही अणुसास अप्पगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/7*

आगे तुम्हें दु:ख न भोगना पड़े, अत: अभी से अपने आपको विषय-वासना से दूर रखकर अनुशासित करो ।

147. अज्ञ, अभिमानी

बालजणे पगब्भती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 646]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/10*

अज्ञ अभिमान करते हैं ।

148. परिषह सहिष्णु

ण विता अहमेवलुप्पए, लुप्पंती लोगंसि पाणिणो ।
एवं सहिएऽधिपासते, अणिहे पुट्ठोऽधियासए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

— *सूत्रकृतांग 1/2/1/13*

कष्ट तथा आपत्ति के आने पर ज्ञान-सम्पन्न पुरुष खेद रहित मन से इसप्रकार विचार करें कि कष्टों से केवल मैं ही पीड़ित नहीं हूँ, किंतु संसार में दूसरे भी इनसे पीड़ित हैं । अत: जो कष्ट आए हैं, उन्हें संयमी साधक समभावपूर्वक सहन करें ।

149. कष्ट सहिष्णु

अणिहे से पुट्ठोऽधियासए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/13***

आत्मविद् साधक को निःस्पृह होकर आनेवाले कष्टों को सहन करना चाहिए ।

150. देह-कृश

धुणिया कुलियं व लेववं, कसए देहमणासणादिहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/14***

जैसे लीपी हुई दीवार गिराकर पतली कर दी जाती है, वैसे ही अनशन आदि तपश्चरण के द्वारा देह को कृश करो ।

151. समाधिकामी सहिष्णु

अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू,
तणाइफासं तह सीतफासं ।
उण्हं च दंसं च हियासएज्जा,
सुब्भिं च दुब्भिं च तितिक्खएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

— ***सूत्रकृतांग 1/10/14***

समाधिकामी मुनि संयम में अरति (खेद) और असंयम में रति (रूचि) को जीतकर तृणादि स्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमसक स्पर्श को समभाव से सहन करे तथा सुगन्ध-दुर्गन्ध को भी सहन करे ।

152. चार्वाक दर्शन-मान्यता

पिब ! खाद च चारुलोचने, यदतीते वरगात्रि ! तन्नते ।
नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं हि कलेवरम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

– *षड्दर्शनसमुच्चय* – 82

हे सुनयने ! खाओ और पीओ । जो चला गया वह लौटकर कभी नहीं आता, इसलिए अतीत अपना नहीं है । सिर्फ वर्तमान मात्र अपना है । वर्तमान में आनंद से रहो । यह शरीर तो मात्र पाँच भूतों का समुदाय है । जब समुदाय बिखर जाएगा तो सब कुछ यहीं समाप्त हो जाएगा ।

153. मूढ़, विषादानुभव

तत्थ मंदा विसीयंति मच्छा पविट्ठा व केयणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 647]

– *सूत्रकृतांग 1/3/1/13*

जैसे जाल में फंसी हुई मछलियाँ तड़फती हैं, विषाद का अनुभव करती हैं, वैसे ही मूर्ख साधक भी मुनिधर्म में विषाद का अनुभव करते हैं, क्लेश पाते हैं ।

154. त्रिविध-पर्षदा

सा समासओ तिविहा पणत्ता । तं जहा -
जाणिया अजाणिया दुव्विअडा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 648]

– *बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य 1/3*

सभा (पर्षदा) तीन प्रकार की होती है-ज्ञा (जाननेवाली), अज्ञा (नहीं जाननेवाली) और दुर्विदग्धा ।

155. कायर पलायनवादी

कीवाऽवसगता गिहं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 648]

– *सूत्रकृतांग 1/3/1/17*

परिषहों से विवश होकर वे ही संयम छोड़कर घर चले जाते हैं जो असमर्थ हैं, कायर हैं ।

156. स्मृति

नातीणं सरती बाले, इत्थी वा कुद्धगामिणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 648]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/1/16***

कमजोर और अज्ञानी साधक कष्ट आनेपर अपने सम्बन्धियों को वैसे ही याद करता है, जैसे झगड़कर घर से भागी हुई स्त्री चोरों से प्रताड़ित होने पर अपने घरवालों को याद करती है।

157. पुण्य-पाप क्या ?

परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 697]

— ***पंचतंत्र 3/101 एवं 4/101***

उपकार जैसा कोई पुण्य नहीं है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने जैसा कोई पाप नहीं है।

158. वाचालता बनाम झूठ

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 725]

— ***स्थानांग 6/6/529***

वाचालता सत्यवचन का विघात करती है।

159. निष्काम

सव्वत्थ भगवता अणिताणता पसत्था ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 725]

— ***स्थानांग 6/6/529***

भगवान् ने सर्वत्र निष्कामता (अनिदानता) को श्रेष्ठ बताया है।

160. लोभ

इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमंथू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 725]

— ***स्थानांग 6/6/529***

लोभ मुक्ति-मार्ग का बाधक है।

161. हिंसा

अट्ठा हणंति अणट्ठा हणंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 835]

— *प्रश्नव्याकरण 1/1/3*

कुछ लोग प्रयोजन से हिंसा करते हैं और कुछ लोग बिना प्रयोजन भी हिंसा करते हैं ।

162. हिंसा-प्रयोजन

कुद्धा हणंति लुद्धा हणंति मुद्धा हणंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 835]

— *प्रश्नव्याकरण 1/1/3*

कुछ लोग क्रोध से हिंसा करते हैं, कुछ लोग लोभ से हिंसा करते हैं और कुछ लोग अज्ञान से हिंसा करते हैं ।

163. महाभयंकर प्राणवध

पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो अणारिओ निग्घिणो निस्संसो महब्भओ........॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 843]

— *प्रश्नव्याकरण 1/1/4*

प्राणवध (हिंसा) चण्ड है, रौद्र है, क्षुद्र है, अनार्य है, करुणारहित है, क्रूर है और महाभयंकर है ।

164. हिंसा-परिणाम

न य अवेदयित्ता, अत्थि हु मोक्खो त्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 843]

— *प्रश्नव्याकरण 1/1/4*

हिंसा के कटु फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं है ।

165. धर्म, प्राणों से भी बढ़कर !

प्राणेभ्योऽपि गुरुर्धर्मः, सत्यामस्यामस्यामसंशयम् ।
प्राणांस्त्यजन्ति धर्मार्थं, न धर्मं प्राणसङ्कटे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 848]

— ***योगदृष्टि समुच्चय 58***

एवं द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका सटीक 20

दीप्रा दृष्टि में रहा हुआ साधक का मन:स्तर इतना ऊँचा हो जाता है कि वह निश्चित रूप से धर्म को प्राणों से भी बढ़कर मानता है। वह धर्म के लिए प्राणों का त्याग कर देता है, किन्तु प्राणघातक संकट आ जाने पर भी धर्म को नहीं छोड़ता।

166. त्रिविध-प्राणायाम

रेचकः स्याद् बहिर्वृत्ति-रन्तर्वृत्तिश्च पूरकः ।
कुम्भकस्तम्भवृत्तिश्च, प्राणायामस्त्रिधेत्ययम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 848]

— ***द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका 22/17***

प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं-रेचक, पूरक और कुम्भक। बहिर्वृत्ति को, बाह्यभाव को बाहर फैंकना 'रेचक' है, अन्तर्वृत्ति ग्रहण करना 'पूरक' है और उसी अन्तर्वृत्ति को हृदय में स्थिर करना 'कुंभक' है।

167. प्रायश्चित्त

प्रायः पाप विनिर्दिष्टं, चित्तं तस्य च विशोधनम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 855]

— ***धर्मसंग्रह - 3 अधि.***

'प्राय:' शब्द का अर्थ पाप है और 'चित्त' का अर्थ है उस पाप का शोधन करना अर्थात् पाप को शुद्ध करनेवाली क्रिया को 'प्रायश्चित्त' कहते हैं।

168. प्रायश्चित्त-महत्ता

पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ निरइयारे यावि भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ आयारं च आयरफलं च आराहेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 856]

— *उत्तराध्ययन 29/18*

प्रायश्चित्त करने से जीव पापों की विशुद्धि करता है एवं निरतिचार निर्दोष बनता है। सम्यक् प्रकार से प्रायश्चित्त स्वीकार करनेवाला साधक मार्ग और मार्गफल को निर्मल करता है। आचार और आचार-फल की आराधना करता है।

169. दोष न्यूनाधिकता

तुल्लम्मि वि अवराहे, परिणामवसेण होइ णाणत्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 858]

— *बृह. भाष्य 4974*

बाहर में समान अपराध होने पर भी अन्तर में परिणामों की तीव्रता व मन्दता सम्बन्धी तरतमता के कारण दोष की न्यूनाधिकता होती है।

170. पाप-परिभाषा

पातयति नरकाऽऽदिष्विति पापम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 876]

— *आवश्यक 4*

नरकादि दुर्गतियों में जो गिराता है, वह पाप है।

171. पाप-निरुक्ति

पातयति पांशयतीति वा पापं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 880]

— *उत्तराध्ययन चूर्णि-2*

एवं आचारांग 1/2/2 सटीक

जो आत्मा को बांधता है अथवा गिराता है, वह पाप है।

172. दुर्लभ बोधि-लाभ

सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं विहरेज्ज ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 881]

— *उत्तराध्ययन 17/1*

सेवाव्रती सुदुर्लभ बोधि-लाभ की प्राप्ति के लिए विचरण करे ।

173. पापश्रमण

आयरिय-उवज्झाएहिं सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसई बाले, पाव समणेत्ति वुच्चई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 881]

— *उत्तराध्ययन 17/4*

जिन आचार्य, उपाध्याय से श्रुत और विनय सीखा है उन्हीं की जो निंदा करता है, वह अज्ञ भिक्षु पापश्रमण कहलाता है ।

174. पापश्रमण

जे केइ उ इमे पव्वइए निद्दासीले पकामसो ।
भुच्चा पिच्चा सुहं सुयई, पावसमणेत्ति वुच्चई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 881]

— *उत्तराध्ययन 17/3*

जो श्रमण प्रव्रजित होकर बहुत नींद लेता है और खा पीकर आराम से लेट जाता है, वह 'पापश्रमण' कहलाता है ।

175. पापश्रमण

विवायं च उदीरेइ, अधम्मे अत्तपन्नहा ।
दुग्गहे कलहे रत्ते, पाव समणेत्ति वुच्चई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 882]

— *उत्तराध्ययन 17/12*

जो श्रमण शान्त हुए विवाद को फिर से भड़काता है, जो सदाचार से शून्य होता है; जो अपनी प्रज्ञा का हनन करता है तथा जो कदाग्रह और कलह में रहता है, वह 'पापश्रमण' कहलाता है ।

176. पापश्रमण

असंविभागी अचियत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 882]

— *उत्तराध्ययन 17/11*

जो श्रमण असंविभागी है (प्राप्त सामग्री को साथियों में नहीं बाँटता है और परस्पर प्रेमभाव नहीं रखता है) वह 'पापश्रमण' कहलाता है।

177. आहार-शुद्धि से चारित्र-शुद्धि

एए विसोहयंतो, पिंडं सोहेइ संसओ नत्थि ।
एए अविसोहिंते, चरित्तभेयं वियाणाहि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 928]
— *पिंडनिर्युक्तिगाथा 98*

यह निस्सन्देह है कि जो निर्दोष आहार वापरते हैं, उनका चारित्र नष्ट नहीं होता और जो सदोष आहार वापरते हैं, उनका चारित्र नष्ट होता है अर्थात् आहार-शुद्धि से चारित्र-शुद्धि होती है।

178. श्रमणत्व-सार

समणत्तणस्स सारो भिक्खायरिया जिणेहिं पन्नत्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 928]
— *पिण्डनिर्युक्ति - गाथा 99*

भिक्षा-शुद्धि करना अर्थात् निर्दोष आहार-प्राप्ति का प्रयास करना, यह श्रमणत्व का सार है।

179. दीक्षा निरर्थक कब ?

पिंड असोहयंतो अचरित्ती एत्थ संसओ नत्थि ।
चारित्तंमि असंते, निरत्थिआ होइ दिक्खा उ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 928]
— *पिण्डनिर्युक्ति गाथा - 101*

जो आहार की गवेषणा नहीं करते हैं, वे चारित्रहीन हैं, यह निःसन्देह है। चारित्र के अभाव में उनकी दीक्षा निरर्थक होती है।

180. भिक्षा-शुद्धि

नाणचरणस्समूलं, भिक्खायरिया जिणेहिं पन्नत्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 928]

— *पिण्डनिर्युक्ति गाथा* – *100*

'ज्ञान और चारित्र का मूल भिक्षाशुद्धि है', ऐसा जिनेश्वरोंने कहा है।

181. चारित्र-शुद्धि से मोक्षप्राप्ति

चारित्तंमि असंतंमि निव्वाणं न उ गच्छइ ।
निव्वाणम्मि असंतंमि सव्वा दिक्खा निरत्थगा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 928]
— *पिण्डनिर्युक्ति गाथा 102*

जिनमें चारित्र नहीं हैं, वे मुक्ति में नहीं जाते हैं (अर्थात् चारित्र-शुद्धि से मोक्ष-प्राप्ति सम्भव है।) और मुक्ति के अभाव में उनकी संपूर्ण दीक्षा निरर्थक है।

182. प्रणीत पदार्थ-त्याग

पणीअं वज्जए रसं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 931]
— *दशवैकालिक 5/2/42*

बुद्धिमान् स्निग्ध रसयुक्त पदार्थों का त्याग करें।

183. तपश्चरण

तवं कुव्वइ मेहावी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 931]
— *दशवैकालिक 5/2/42*

मेधावी तपश्चरण करता है।

184. जीवन-दान

यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुन्धराम् ।
एकस्य जीवितं दद्यान्न च तुल्यं युधिष्ठिर ! ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 936]
— *कल्पसुबोधिका टीका 2/8*

एक मनुष्य मेरुपर्वत के बराबर स्वर्ण किसी को दान में दें और एक व्यक्ति संपूर्ण पृथ्वी का दान दें तथा एक मनुष्य किसी भी प्राणी को अभयदान दें, तो भी प्रथम के दोनों दानी अभयदान देनेवाले के समक्ष हीन हैं; क्योंकि इस संसार में अहिंसा के समान कुछ भी नहीं है।

185. पैशुन्य-परिणाम

पीई सुन्नति पिसुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 939]

— *निशीथ भाष्य 6212*

जो प्रीति से शून्य करता है, वह पैशुन्य (चुगली) है और वह प्रेम-स्नेह को समाप्त कर देता है।

186. पुंडरीक कमल

अहवा वि नाण दंसण चरित्त विणए तहेव अज्झप्पे ।
जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीया उ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 944]

— *सूत्रकृतांग निर्युक्ति 156*

जो साधक अध्यात्मभाव रूप ज्ञान, दर्शन, चारित्र और विनय में श्रेष्ठ हैं, वे ही विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुंडरीक कमल हैं।

187. भवितव्यता

प्राप्तव्यो नियतिबलाऽऽश्रयेण योऽर्थः,
सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ।
भूतानां महति कृतेऽपि प्रयत्ने,
ना भाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 953]

— *सूत्रकृतांग 2/1 सटीक*

मानव को शुभ या अशुभ जो भी फल प्राप्त होता है वह नियति (भाग्य) के बल का ही आश्रयी फल समझना चाहिए। प्राणियों के महान् प्रयत्न करने पर भी जो भवितव्य नहीं है, वह होगा नहीं एवं जो भवितव्यता है, होनेवाला है वह टल नहीं सकता। जो होनेवाला है, उसका कभी नाश सम्भव नहीं। वह अवश्य ही होगा।

188. पाप से अलिप्त कौन ?

यस्य बुद्धि र्न लिप्येत, हत्वा सर्वमिदं जगत् ।
आकाशमिव पङ्केन, नासौ पापेन लिप्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 953]

— *ज्ञानसार 4/3*

जिनकी बुद्धि निर्लिप्त हैं। जो विषयों से लिप्त नहीं हैं, जो जितेन्द्रिय हैं, जो काम, क्रोध, मोहादि कषायों से परे हैं, स्थितप्रज्ञ हैं, वे संसार का संहार करने पर भी पाप से लिप्त नहीं होते। यथा-आकाश कभी कीचड़ से लिप्त नहीं होता। भले ही वह जल की एक बूँद में भासमान आकाश हो या संपूर्ण जलाशय में भासमान आकाश हो; उसीप्रकार अनासक्त आत्मा भी कभी पाप लिप्त नहीं होता।

189. अशरण भावना

इह खलु ! नाइ संजोगा नो ताणाए वा, नो सरणाए वा ।
पुरिसे वा एगया पुव्विं नाइ संजोगो विप्पजहइ ॥
नाइ संजोगा वा एगया पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति ।
से किमंग ! पुण वयं अन्नमन्नेहिं नाइ संजोगेहिं मुच्छामो ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 956]

— *सूत्रकृतांग 2/1/13*

इस संसार में ज्ञाति-स्वजनों के संयोग भी दु:खों से रक्षा करने वाले नहीं हैं। कभी पहले ही पुरुष इन्हें छोड़कर चल देता है एवं कभी ये पुरुष को छोड़ चलते हैं। फिर अपने से भिन्न-इन ज्ञाति-संयोगों में हम मूर्च्छित क्यों हो रहे हैं ?

190. अशरण चिन्तन

इह खलु काम-भोगा नो ताणाए वा, नो सरणाए वा पुरिसे वा एगया पुव्विं काम-भोगे विप्पजहइ काम-भोगा वा एगया पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति से किमंग पुणवयं, अन्नमन्नेहिं काम-भोगेहिं मुच्छामो ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 956]

– ***सूत्रकृतांग** 2/1/13*

इस संसार में निश्चय ही-ये काम-भोग दु:खों से रक्षा करनेवाले नहीं है। कभी पहले ही पुरुष इन्हें छोड़कर चल देता है और कभी वे पुरुष को छोड़ चलते हैं। फिर हम इन काम-भोगों में आसक्त क्यों हो रहे हैं ?

191. जन्म-मृत्यु

पत्तेयं जायति, पत्तेयं मरइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 956]

– ***सूत्रकृतांग** 2/1/13*

प्रत्येक प्राणी अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है।

192. दु:ख का बँटवारा नहीं !

अण्णास्स दुक्खं अण्णो नो परियाइयति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 956]

– ***सूत्रकृतांग** 2/1/13*

किसी अन्य का दु:ख कोई अन्य बाँट नहीं सकता।

193. जड़ पृथक्, आत्मा पृथक्

अन्ने खलु कामभोगा, अन्नो अहमंसि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 956]

– ***सूत्रकृतांग** 2/1/13*

शब्द, रूप आदि काम-भोग (जड़ पदार्थ) और हैं, मैं (आत्मा) और हूँ।

194. क्षणभङ्गुर शरीर

जंपिय इमं सरीरए उरालं आहारोवइयं ।
एयं पिय अणुपुव्वेण विप्पजहियव्वं भविस्सति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 957]
– *सूत्रकृतांग 2/1/13*

आहार से बढ़ा हुआ जो यह उत्तम औदारिक शरीर है, उसे भी क्रमशः अवधि पूरी होने पर छोड़ देना पड़ेगा ।

195. प्रत्येक शरीरी

संति पाणा पूढोसिता ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 979]
– *आचारांग 1/1/2/11*

प्राणी पृथक्-पृथक् शरीरों में आश्रित रहते हैं अर्थात् वे प्रत्येक शरीरी होते हैं ।

196. आतुर

आतुरा परितावेंति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 979]
– *आचारांग 1/1/6/49*

विषयातुर मनुष्य ही परिताप देते हैं ।

197. पूर्णता

अपूर्णः पूर्णतामेति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 991]
– *ज्ञानसार 1/6*

'अपूर्ण' पूर्णता प्राप्त करे ।

(अर्थात् जीव अपूर्ण है, शिव पूर्ण है । अपूर्णता के घोर अंधकार में से पूर्णता के उज्ज्वल प्रकाश की ओर जाएँ । समग्र धर्मपुरुषार्थ का ध्येय पूर्णता की प्राप्ति है ।)

198. ज्ञानदृष्टि, गारूड़ी मंत्रवत्

जागर्ति ज्ञानदृष्टिश्चेत्, तृष्णा-कृष्णाहि जाङ्गुली ।
पूर्णानन्दस्य तत् किं स्याद्, दैन्यवृश्चिकवेदना ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 991]

— *ज्ञानसार 1/4*

जब तृष्णा रूपी काले सर्प के विष को नष्ट करनेवाली गारूड़ी मन्त्र के समान ज्ञानदृष्टि खुलती है, तब दीनता रूपी बिच्छू की पीड़ा कैसे हो सकती है ?

199. पूर्णता की प्रभा

पूर्णता या परोपाधेः सा याचित कमण्डनम् ।
या तु स्वाभाविकी सैव, जात्यरत्नविभानिभा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 991]

— *ज्ञानसार 1/2*

परायी वस्तु के निमित्त से प्राप्त पूर्णता, किसी से उधार मांगकर लाये गए आभूषण के समान है, जबकि वास्तविक पूर्णता अमूल्य रत्न की चकाचौंध कर देनेवाली अलौकिक कान्ति के समान है।

200. पुण्यानुबन्धी पुण्य-हेतु

दया भूतेषु वैराग्यं, विधिवद् गुरुपूजनम् ।
विशुद्धाशीलवृत्तिश्च, पुण्यं पुण्यानुबन्ध्यदः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 993]

— *हारिभद्रीय अष्टक 24/8*

सब प्राणियों पर दया, वैराग्य, विधिपूर्वक गुरु की सेवा एवं अहिंसा आदि व्रतों का निर्दोष पालन-ये सब पुण्यानुबन्धी पुण्य के कारण हैं।

201. विरले हैं गुणी गुणानुरागी

ना गुणी गुणिनं वेत्ति, गुणी गुणीषु मत्सरी ।
गुणी गुणानुरागी च, विरलः सरलोजनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1006]

— *धर्मरत्नप्रकरणसटीक 1 अधि. 12 गुण*

अवगुणी व्यक्ति गुणवानों को नहीं जान सकता। (अवगुणी गुणवानों को नहीं परख सकता।) गुणवान् गुणीजनों के प्रति आदर रखने के बजाय उल्टा उनके प्रति मत्सर-ईर्ष्या रखते हैं। वस्तुत: सरलमना-सच्चे गुणवान् और गुणानुरागी मिलना बड़ा दुर्लभ है।

202. पुरुष-प्रकार

चत्तारि पुरिस जाता-पन्नत्ता । तं जहा
आवात भद्दतेणामेगे णो संवास भद्दते,
संवास भद्दते णामेगे णो आवात भद्दणए,
एगे आवात भद्दते वि संवास भद्दते वि,
एगे णो आवात भद्दते नो संवास भद्दए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1018]

— *स्थानांग 4/4/1/256*

चार तरह के पुरुष होते हैं —

कुछ व्यक्तियों की मुलाकात अच्छी होती है, किन्तु सहवास अच्छा नहीं होता।

कुछ का सहवास अच्छा रहता है, मुलाकात नहीं।

कुछ एक की मुलाकात भी अच्छी होती है और सहवास भी।

कुछ एक का न सहवास ही अच्छा होता है और न मुलाकात ही।

203. दोष-विकल्प

चत्तारि पुरिस जाता-पणत्ता । तं जहा-
अप्पणो मेगे वज्जं पासति, णो परस्स,
परस्स, णामेगे वज्जं पासति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणो वज्जं पासइ परस्स वि,
एगे णो अप्पणो वज्जं पासइ णो परस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1018]

— *स्थानांग 4/4/1/256*

पुरुष चार तरह के होते हैं -
कुछ व्यक्ति अपना दोष देखते हैं, दूसरों का नहीं ।
कुछ दूसरों का दोष देखते हैं, अपना नहीं ।
कुछ अपना दोष भी देखते हैं, दूसरों का भी ।
कुछ न अपना दोष देखते हैं, न दूसरों का ।

204. पुत्र-प्रकार

चत्तारि सुता-पन्नत्ता । तं जहा-
अतिजाते, अणुजाते,
अवजाते, कुलिंगाले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1018]
— *स्थानांग 4/4/1/240*

पुत्र चार तरह के होते हैं — अतिजात, अनुजात, अवजात और कुलांगार ।

205. पुरुष-प्रकृति

चत्तारि फला-पणत्ता । तं जहा
आमे णामं एगे आम महुरे,
आमे णामेगे पक्क महुरे,
पक्के णामेगे आम महुरे,
पक्के णामेगे पक्क महुरे
एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पन्नत्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1018]
— *स्थानांग 4/1*

फल चार प्रकार के होते हैं-कुछ फल कच्चे होकर भी थोड़े मधुर होते हैं । कुछ फल कच्चे होने पर भी पके की तरह अतिमधुर होते हैं । कुछ फल पके होकर भी थोड़े मधुर होते हैं और कुछ फल पके होने पर अति मधुर होते हैं । फल की तरह मनुष्य के भी चार प्रकार होते हैं-लघुवय में साधारण समझदार । लघुवय में बड़ी उम्रवालों की तरह समझदार । बड़ी उम्र में भी कम समझदार । बड़ी उम्र में पूर्ण समझदार ।

206. स्वभाव-वैचित्र्य

चत्तारि पुरिस जाता-पन्नता । तं जहा-
अप्पणो णाममेगे पत्तितं, करेति णो परस्स,
परस्स णाममेगे पत्तियं करेति णो अप्पणो ।
एगे अप्पणो वि पत्तितं करेति परस्स वि,
एगेणो अप्पणो पत्तितं करेइ नो परस्स ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1024]
– *स्थानांग 4/4/3/312 [4]*

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सिर्फ अपना ही भला चाहते हैं, दूसरों का नहीं ।

कुछ उदार व्यक्ति अपना भला चाहे बिना भी दूसरों का भला करते हैं ।

कुछ अपना भला भी करते हैं और दूसरों का भी ।
और कुछ न अपना भला करते हैं और न दूसरों का ।

207. सुमन-सौरभवत्

चत्तारि पुप्फा-पन्नत्ता । तं जहा-
रूव संपन्ने णाम मेगे णो गंधसंपन्ने,
गंध संपन्ने णाममेगे नो रूवसंपन्ने,
एगे रूव सम्पन्ने वि गंधसम्पन्ने वि,
एगे णो रूव सम्पन्ने णो गंधसम्पन्ने,
एवामेव चत्तारि पुरिस जाता पन्नता ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026]
– *स्थानांग 4/4/3/319 [4]*

फूल चार प्रकार के होते हैं -
सुन्दर, किन्तु गंधहीन ।
गन्धयुक्त, किन्तु सौन्दर्यहीन ।
सुन्दर भी, सुगन्धित भी ।

न सुन्दर, न गंधयुक्त।

फूल के समान मनुष्य भी चार तरह के होते हैं। (भौतिक संपत्ति सौन्दर्य है तो आध्यात्मिक संपत्ति सुगन्ध है।)

208. धर्मी-लक्षण

चत्तारि पुरिस जाया-पन्नता। तं जहा-
पियधम्मे नाममेगे नो दढधम्मे,
दढधम्मे नाममेगे नो पियधम्मे,
एगे पियधम्मे वि दढधम्मेवि,
एगे नो पियधम्मे नो दढधम्मे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026-1027]

— *स्थानांग 4/4/3/319*

पुरुष चार तरह के होने हैं-
कुछ व्यक्ति प्रियधर्मी होते हैं, किंतु दृढ़धर्मी नहीं होते।
कुछ व्यक्ति दृढ़धर्मी होते हैं, किन्तु प्रियधर्मी नहीं होते।
कुछ व्यक्ति प्रियधर्मी भी होते हैं और दृढ़धर्मी भी।
और कुछ व्यक्ति प्रियधर्मी भी नहीं होते हैं और दृढ़धर्मी भी नहीं।

209. पुरुष-गुण

चत्तारि पुरिस जाता-
अट्ठकरे णाममेगे णो माण करे,
माण करे णाममेगे णो अट्ठकरे,
.एगे अट्करे वि माण करे वि,
एगे णो अट्ठकरे णो माण करे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026-1034]

— *स्थानांग 4/4/3/319*

१. कुछ व्यक्ति सेवा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, किंतु उसका अभिमान नहीं करते ।

२. कुछ व्यक्ति अभिमान करते हैं, किन्तु कार्य नहीं करते ।

३ कुछ व्यक्ति कार्य भी करते हैं, और अभिमान भी करते हैं ।

४ और कुछ व्यक्ति न कार्य करते हैं, न अभिमान ही करते हैं ।

210. धर्म और वेष

चत्तारि पुरिस जाया-पन्नता । तं जहा-
रूव नाममेगे जहइ नो धम्मं,
धम्मं नामेगे जहइ नो रूवं,
एगे रूवंपि जहइ धम्मं पि जहइ,
एगे नो रूवं जहइ नो धम्मं जहइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026]
— *स्थानांग 10/9/743*

चार तरह के पुरुष होते हैं-
कुछ व्यक्ति वेष छोड़ देते हैं, किन्तु धर्म नहीं छोड़ते ।
कुछ धर्म छोड़ देते हैं, किन्तु वेष नहीं छोड़ते ।
कुछ वेष भी छोड़ देते हैं और धर्म भी छोड़ देते हैं ।
और कुछ ऐसे भी होते हैं जो न वेष छोड़ते और न धर्म ।

211. फलवद् आचार्य

चत्तारि फला पणत्ता । तं जहा-
आमलगमहुरे, मुद्दिता महुरे,
खीर महुरे, खण्ड महुरे ।
एवामेव चत्तारि आयरिया पन्नता ।
तं जहा-आमलगमहुरफल समाणे,
मुद्दिया महुरफल समाणे,
खीर महुरफल समाणे,
खंड महुरफल समाणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026]
– *स्थानांग 4/4/3/319*

चार तरह के फल होते हैं-आँवले के मीठे फल, द्राक्ष के मीठे फल, खीर के मीठे फल और इक्षु खंड के मीठे फल । इसीतरह चार प्रकार के आचार्य कहे गए हैं । यथा-१. आँवले के मीठे फल समान २. द्राक्षा के मीठे फल समान ३. खीर के मीठे फल समान ४. और इक्षु खंड के मीठे फल समान । ये आचार्य उपशमादि गुणों में क्रमश: एक-एक से उत्कृष्ट होते हैं ।

212. निरभिमान सेवा

अट्ठकरे णाममेगे णो माण करे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1026 1034]
– *स्थानांग 4/4/3/319*

कुछ लोग सेवा के कार्य करते हैं, फिरभी उनका अभिमान नहीं करते ।

213. ज्योति

तमे नाममेगे जोती, जोती णाममेगे तमे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1028]
– *स्थानांग 4/4/3/327*

कभी-कभी अंधकार (अज्ञानी मानव) में से भी ज्योति (सदाचार का प्रकाश) जल उठती है, इसीप्रकार ज्ञानीपुरुष से भी किसीसमय अज्ञान का आर्विभाव हो जाता है ।

214. चार प्रकार के श्रमण

चत्तारि पुरिस जाता-पन्नत्ता-
सीहत्ताते णाममेगे निक्खंते सीहत्ताते विहरइ,
सीहत्ताते नाममेगे निक्खंते सियालत्ताए विहरइ,
सियालत्ताए नाममेगे निक्खंते सीहत्ताए विहरइ,
सियालत्ताए नाममेगे निक्खंते सियालत्ताए विहरइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1029]

— *स्थानांग 4/4/3/329*

श्रमण चार प्रकार के होते हैं-

१. कुछ सिंह की तरह संयम लेते हैं और सिंह की तरह ही पालते हैं।

२. कुछ सिंह की तरह संयम लेते हैं और सियाल की तरह पालते हैं।

३. कुछ सियाल की तरह संयम लेते हैं और सिंह की तरह पालते हैं

४. और कुछ ऐसे भी होते हैं जो सियाल की तरह संयम लेते हैं और सियाल की तरह ही पालते हैं।

215. मेघवत् दानी

गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता,
वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता,
एगे गज्जित्ता वि वासित्तावि,
एगेणो गज्जिता णो वासित्ता,
एवामेव चत्तारि पुरिस जाता पन्नत्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1030]

— *स्थानांग 4/4/4/346 [4]*

मेघ की तरह दानी भी चारप्रकार के होते हैं-
कुछ बोलते हैं, देते नहीं ।
कुछ देते हैं, किंतु कभी बोलते नहीं ।
कुछ बोलते भी हैं और देते भी हैं और
कुछ न बोलते हैं, न देते हैं ।

216. संकल्प-विकल्प

समुद्दं तरामी तेगे समुद्दं तरति,
समुद्दं तरामी तेगे गोप्पतं तरति ।
गोप्पतं तरामी तेगे, समुद्दं तरति,
गोप्पतं तरामी तेगे, गोप्पतं तरति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1032]

— *स्थानांग 4/4/4/359*

कुछ व्यक्ति समुद्र तैरने का महान् संकल्प करते हैं और समुद्र तैरने जैसा ही महान् कार्य भी करते हैं।

कुछ व्यक्ति छोटा काम करते हुए भी महान् काम करने का संकल्प नहीं करते हैं और समुद्र तैरने जैसा महान् काम भी नहीं करते हैं।

217. कुम्भवत् पुरुष

महुकुंभे नामं एगे महुप्पिहाणे,
महुकुंभे णामं एगे विसप्पिहाणे,
विस कुंभे णामं एगे महुप्पिहाणे,
विसकुंभे णामं एगे विसप्पिहाणे।
एवामेव चत्तारि पुरिस जाता पन्नता॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1033]

— *स्थानांग 4/4/4/360 [4]*

चार तरह के घड़े होते हैं। यथा-
मधु का घड़ा, मधु का ढक्कन।
मधु का घड़ा, विष का ढक्कन।
विष का घड़ा, मधु का ढक्कन।
विष का घड़ा, विष का ढक्कन।
इसीप्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं।
(मानव पक्ष में हृदय घट है और वचन ढक्कन)

218. मधु-कलश

हिययमपावमकलुसं, जीहा वियं मधुरभासिणी निच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे महुपिहाणे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1033]

— *स्थानांग 4/4/4/360 [26]*

जिसका अन्तर्हृदय निष्पाप और निर्मल है, साथ ही वाणी भी मधुर है; वह मनुष्य मधु के घड़े पर मधु के ढक्कन के समान है।

219. हृदय-घट पर विष-ढक्कन

हियमपावमकलुसं, जीहा विय कडुयभासिणी निच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे विसपिधाणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1033]

— *स्थानांग 4/4/4/360 [27]*

जिसका हृदय तो निष्पाप और निर्मल है, किंतु वाणी से कटु एवं कठोरभाषी है, वह मनुष्य मधु के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।

220. विषकुम्भ पयोमुखम्

जं हिययं कलुसमयं, जीहा विय मधुरभासिणी निच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकुंभे मधुपिधाणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1033]

— *स्थानांग 4/4/4/360 [28]*

जिसका हृदय कलुषित और दंभयुक्त है, किन्तु वाणी से मीठा बोलता है वह मनुष्य विष के घड़े पर मधु के ढक्कन के समान है।

221. जहर ही जहर

जं हिययं कलुसमयं, जीहा विय कडुयभासिणी निच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकुंभे विसपिधाणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1033]

— *स्थानांग 4/4/4/360 [29]*

जिसका हृदय भी कलुषित है और वाणी से भी सदा कटु बोलता है, वह पुरुष विष के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।

222. साध्य-असाध्य

सज्झमसज्झं कज्जं, सज्झं, साहिज्जए न उ असज्झं।
जो उ असज्झं साहइ, किलिस्सइ न तं च साहेइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1071]

— *निशीथभाष्य 4157*

— *बृहदावश्यक भाष्य 5279*

कार्य के दो रूप हैं-साध्य और असाध्य। बुद्धिमान् साध्य को साधने में ही प्रयत्न करें; चूँकि असाध्य को साधने में व्यर्थ का क्लेश ही होता है और कार्य भी सिद्ध नहीं हो पाता।

223. आत्मदेव-पूजा

दयाम्भसा कृतस्नानः, संतोष शुभवस्त्रभृत्।
विवेकतिलकभ्राजी, भावना पावनाशयः॥
भक्ति श्रद्धान घुसृणो, न्मिश्रपाटीरजद्रवैः।
नवब्रह्माङ्गतोदेवं, शुद्धमात्मानमर्चय॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1073]
एवं [भाग 2 पृ. 233]
– *ज्ञानसार 29/1-2*

दयारूपी जल से स्नान कर, संतोष रूपी वस्त्र धारण कर, विवेक रूपी तिलक लगाकर, भक्ति और श्रद्धा रूपी-केशर तथा मिश्रित विलेपन तैयार कर, भावना से आशय को पवित्र बनाकर शुद्ध आत्म-देव के नव प्रकार के ब्रह्मचर्य रूपी नव अंगों की पूजन करें।

224. विधिवत् दान

पात्रे दीनादि वर्गे च, दानं विधिवदिष्यते।
पोष्यवर्गाविरोधेन, न विरुद्धं स्वतश्च यत्॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1076]
एवं [भाग 6 पृ. 2003]
– *योगबिन्दु 121*

आश्रित जनों को संतोष रहे, विरोध न हो तथा स्वतः विरुद्ध कर्म न हो; इसप्रकार सुपात्र, दीन व अनाथ आदि को देना; वह विधिवत् दान कहलाता है।

225. दान, प्रथम सीढ़ी

धर्मस्याऽऽदिपदं दानं, दानं दारिद्रय नाशनम्।
जनप्रियकरं दानं, दानं कीर्त्यादिवर्धनम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1076]

— ***योगबिन्दु 125***

धर्म का प्रथम सोपान दान है और वह दरिद्रता का नाशक है। लोगों को प्रिय करनेवाला तथा कीर्ति आदि को बढ़ानेवाला है।

226. उपयुक्त दान

दत्तं यदुपकाराय, द्वयोरप्युपजायते ।
नातुरापथ्यतुल्यं तु, तदेतद् विधिवन्मतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1076]

— ***योगबिन्दु 124***

दिया हुआ दान, दाता और गृहीता दोनों के लिए उपकारजनक होना है, वह दान उपयुक्त दान है। दान बीमार को अपथ्य दिए जाने जैसा नहीं चाहिए अर्थात् किसी रुग्ण व्यक्ति को कोई सुस्वादु और पौष्टिक पदार्थ दे, जो उसके लिए अहितकर हो; तो वह सर्वथा अनुचित है। इसीप्रकार दिया गया दान लेनेवाले के लिए अहितकर न होकर हितकर होना चाहिए और उसीतरह देनेवाले के लिए भी।

227. दान के योग्य पात्र

व्रतस्थालिङ्गिनः पात्र-मपचारस्तु विशेषतः ।
स्वसिद्धान्ताविरोधेन वर्तन्ते ये सदैव हि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1076]

— ***योगबिन्दु 122***

व्रतपालक, साधु वेश में स्थित, सदा अपने सिद्धान्त के अविरुद्ध चलनेवाले जन दान के पात्र हैं, उनमें भी विशेषतः वे, जो अपने लिए भोजन नहीं बनाते।

228. दानाधिकारी

दीनान्धकृपणा ये तु व्याधिग्रस्ता विशेषतः ।
निःस्वाः क्रियान्तराशक्ता एतद्वर्गो हि मीलकः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1076]

— *योगबिन्दु 123*

जो कार्य करने में सक्षम नहीं हैं, अन्धे हैं, दुःखी हैं; विशेषतः रोग-पीड़ित हैं, निर्धन हैं; और जिनके आजीविका का कोई सहारा नहीं है; ऐसे लोग भी निश्चय ही दान के अधिकारी हैं।

229. कर्णेन्द्रिय विराग एवं तितिक्षा

कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं, पेमं नाभिनिवेसए ।
दारुणं कक्कसं फासं, काएण अहियासए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1093]

— *दशवैकालिक 8/26*

कानों को सुख देनेवाले मधुर शब्दों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए तथा दारुण और कर्कश स्पर्शों को शरीर से समभावपूर्वक सहन करना चाहिए।

230. पुद्गल-लक्षण

सद्दंधयार-उज्जोओ, पहा छायाऽऽतवेति वा ।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पोग्गलाणां तु लक्खणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1097]

— *उत्तराध्ययन 28/12*

शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श-ये पुद्गल के लक्षण हैं।

231. पौषधव्रत

आहार-तणुसत्काराऽब्रह्मसावद्यकर्मणाम् ।
त्यागः पर्वचतुष्टयां तद् विदुः पौषधव्रतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1133-1139]

— *धर्मसंग्रह 1/37*

आहार, शरीर-सत्कार, अब्रह्मचर्य और सावद्यकार्य-चारों पर्वतिथियों (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा) में इन सबका त्याग करना पौषधव्रत है।

232. सामायिक का महत्त्व

सामाइय-वयजुत्तो, जावमणे होइ नियमसंजुत्तो।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1136]
— *आवश्यक निर्युक्ति 800/2*

चंचल मन को नियन्त्रण में रखते हुए जबतक सामायिक व्रत की अखण्ड धारा चालू रहती है, तबतक अशुभ कर्म बराबर क्षीण होते रहते हैं।

233. भाषा-विवेक

तहेव फरुसा भासा, गुरु भूओवघाइणी।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1143]
— *दशवैकालिक 7/11*

जो भाषा कठोर और दूसरों को पीड़ा पहुँचानेवाली हो, वैसी भाषा न बोलें।

234. सत्य भी हेय

सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1143]
— *दशवैकालिक 7/11*

ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जिससे पापागम (अनिष्ट) होता हो।

235. द्विविध-बंधन

दुविहे बंधे पन्नत्ते, तं जहा-पेज्जबंधे चेव,
दोस बंधे चेव।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1165]
— *स्थानांग 2/2/4/107*

बन्धन के दो प्रकार हैं — प्रेम का बन्धन और द्वेष का बन्धन।

236. पापकर्म का बन्ध नहीं

सव्वभूयऽप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावं कम्मं न बंधई ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1190]
– *दशवैकालिक 4/32*

जो सब जीवों को अपने ही समान मानता है, जो अपने-पराये को समानदृष्टि से देखता है. जिसने सब आश्रवों का निरोध कर लिया है और जो चंचल इन्द्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप कर्म का बंध नहीं होता ।

237. संयम

जीवाऽजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1190]
– *दशवैकालिक 4/35*

जो न जीव (चैतन्य) को जानता है और न अजीव (जड़) को, वह संयम को कैसे जान पाएगा ?

238. श्रेयस्कर आचरण

जं छेयं तं समायरे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1190]
– *दशवैकालिक 4/34*

जो श्रेयस्कर (हितकर) हो, उसीका अनुसरण करना चाहिए ।

239. श्रेयस्कर ग्राह्य

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं छेयं तं समायरे ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1190]
– *दशवैकालिक 4/34*

व्यक्ति सुनकर ही कल्याण को जानता है और सुनकर ही पाप को जानता है । कल्याण और पाप दोनों को सुनकर ही मनुष्य जान पाता है । तत्पश्चात् उनमें से जो श्रेयस्कर है. उसका आचरण करता है ।

240. परिग्रह बुद्धि, दुःख-दूती

चित्तमंतमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि ।
अन्नं वा अणुजाणाति, एवं दुक्खाण मुच्चइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1191]
— *सूत्रकृतांग 1/1/1/2*

जो व्यक्ति सजीव या निर्जीव, थोड़ी या अधिक वस्तु को परिग्रह बुद्धि से रखता है अथवा दूसरे को रखने की अनुज्ञा देता है, वह दुःख से छुटकारा नहीं पाता ।

241. ममत्त्व मति

ममाती लुप्पती बाले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1191]
— *सूत्रकृतांग 1/1/1/4*

'यह मेरा है, यह मेरा है' इस ममत्व बुद्धि के कारण ही मूर्ख लोग संसार में भटकते रहते हैं ।

242. बंधन से मोक्ष की ओर

बुज्झिज्ज तिउट्टेज्जा बंधणं परिजाणिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1191]
— *सूत्रकृतांग 1/1/1/1*

सर्वप्रथम बन्धन को समझो और समझने के बाद उसे तोड़ो ।

243. हिंसा से वैर

सयं तिवायए पाणे, अदुवा अण्णेहिं घायए ।
हणन्तं वाऽणुजाणाइ, वेरं वड्ढेति अप्पणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1191]
— *सूत्रकृतांग 1/1/1/3*

जो व्यक्ति स्वयं प्राणियों की हिंसा करता हैं दूसरो से करवाता है और करनेवालों का अनुमोदन करता है; वह संसार में अपने लिए वैर को ही बढ़ाता है ।

244. वैर, स्वशत्रुता

वेरं वड्ढेति अप्पणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1191]

— ***सूत्रकृतांग*** *1/1/1/3*

व्यक्ति अपने लिए वैर बढ़ाता है अर्थात् अपनी आत्मा के साथ शत्रुता बढ़ाता है।

245. अशरण अनुप्रेक्षा

वित्तं सोयरिया चेव, सव्वमेतं न ताणए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1192]

— ***सूत्रकृतांग*** *1/1/1/5*

धन-धान्य, स्वजन-कुटुम्ब आदि कोई भी जीवात्मा को इस संसार के परिभ्रमण से नहीं बचा सकते।

246. मानवमात्र एक

एक्का मणुस्स जाई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1257]

— ***आचारांग निर्युक्ति*** *16*

समग्र मानव जाति एक है।

247. ब्रह्मचर्य, मूल

बंभचेरं उत्तमतव नियम-णाण-दंसण
चरित-सम्मत्त विणय मूलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/9/27*

ब्रह्मचर्य-उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है।

248. ब्रह्मचर्यनाशः सर्वनाश

जम्मिय भग्गम्मि होइ सहसा सव्व....गुण समूहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

एक ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर सहसा अन्य सभी-विनय, शील, तप, नियम आदि गुणों का समूह फूटे घड़े की तरह खंडित हो जाता है अर्थात् मर्दित, मथित, चूर्णित(टुकड़ा-टुकड़ा), खण्डित, गलित और विनष्ट हो जाता है ।

249. सार्थक तभी ?

तो पढियं तो गुणियं, तो मुणियं तो य चेइओ अप्पा ।
आवडिय पेल्लियामंतिओऽवि जइ न कुणइ अकज्जं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— ***उपदेशमाला 64***

शास्त्रों का पढ़ना, गुनना-मनन करना, ज्ञानी होना और आत्म-बोध तभी सार्थक है, जब विपत्ति आ पड़ने पर और सामने से आमन्त्रण मिलने पर भी मनुष्य अकार्य अर्थात् अब्रह्म सेवन न करे ।

250. मद्यपान-मांसभक्षण में महापाप

एकश्चतुरोवेदाः, ब्रह्मचर्यं च एकतः ।
एकतः सर्वपापानि, मद्यं मांसं च एकतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— ***सुभाषितरत्न भांडागार पृ. 104***

जैसे चारों वेद एक तरफ हैं और ब्रह्मचर्य एक तरफ है, वैसे ही जगत् के सारे पाप एक तरफ हैं और मद्यपान व मांसभक्षण का पाप एक तरफ हैं ।

251. व्रतराज ब्रह्मचर्य

व्रतानां ब्रह्मचर्यं हि, निर्दिष्टं गुरुकं व्रतम् ।
तज्जन्यपुण्यसंभार संयोगाद् गुरुरुच्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— ***आगमीय सूक्तावली पृ. 35***

[प्रश्नव्याकरण सूक्तानि 29 (133)]

सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य को ही सबसे महान् व्रत कहा गया है और उससे उत्पन्न पुण्य-संभार के संयोग से वह बड़ा कहा जाता है।

252. ब्रह्मचर्य प्रधान

इत्तो य बंभचेरं........यमनियमगुणप्पहाण जुत्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— *प्रश्नव्याकरण 2/4*

यह ब्रह्मचर्य अहिंसा आदि यमों और गुणों में प्रधान नियमों से युक्त है।

253. ब्रह्मचर्य बिन सब व्यर्थ

जइ ठाणी, जइ मोणी, जइ मुंडी वक्कली तवस्सीवा।
पत्थंतो अ अबंभं, बंभावि न रोयए मज्झं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1259]

— *उपदेशमाला 63*

यदि कोई कायोत्सर्ग में स्थित रहे, भले ही कोई मौन रखे, ध्यान में मग्न रहे, भले ही छाल के वस्त्र पहन ले या तपस्वी हो, किन्तु यदि वह अब्रह्मचर्य की कामना करता हो तो मुझे वह नहीं सुहाता। फिर भले ही वह साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न हो ?

254. श्रेष्ठदान

दाणाणं चेव अभय दाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260]

— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

सब दानों में 'अभयदान' श्रेष्ठ है।

255. रागी-निरागी चिन्तन

क्व यामः क्व नु तिष्ठामः, किं कुर्मः किं न कुर्महे ?
रागिणश्चिन्तयन्त्येवं, नीरागाः सुखमासते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260]

— *प्रश्नव्याकरण सूत्र सटीक 4 संवर द्वार*

कहाँ जाऊँ ? कहाँ बैठूँ ? क्या करूँ ? और क्या नहीं करूँ ? इस तरह रागी सोचता रहता है, और नीरागी इन संकल्प-विकल्पों से मुक्त होता है।

256. ब्रह्मचर्य-फल

अणेगा गुणा अहीणा भवंति एकम्मि बंभचेरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260]

— *प्रश्नव्याकरण 2/9/2*

एक ब्रह्मचर्य की साधना करने से अनेक गुण स्वयं अधीन हो जाते हैं।

257. एक साधे सब सधै

एक्कम्मि बंभचेरे जम्मि य आराहियम्मि,
आराहियं वयमिणं सव्वं सीलं तवो य
विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260-1261]

— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

एक ब्रह्मचर्य की आराधना कर लेने पर शील, तप, विनय, संयम. क्षमा, निर्लोभता आदि सभी उत्तमोत्तम व्रतों एवं गुणों की सम्यक् आराधना हो जाती है।

258. ब्रह्मचर्य, व्रतसम्राट् !

तं बंभं भगवंतं........वेरुलिओ चेव जहा मणीणं, जहा महुडो चेव भूसणाणं, वत्थाणं चेव खोमजुयलं, अरविंदं चेव पुप्फ जेट्ठं, गोसीसं चेव चंदणाणं, हिमवं चेव ओसहीणं, सीतोदा चेव तिन्नगाणं, उदहीसु जहा संयभूरमणो...एरावण एव कुंजराणां, कप्पाणां चेव बंभलीए... दाणाणं चेव अभयदाणं.... तित्थयरे चेव जहा मुणीणं.... वणेसु जहा नंदणवणं पवरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/9/27*

जैसे मणियों में वैडूर्य मणि श्रेष्ठ है, भूषणों में मुकुट प्रवर है, वस्त्रों में क्षोभ-युगल (बहुमूल्य रेशमी वस्त्र) मुख्य है पुष्पों में अरविंद पुष्प उत्कृष्ट है, चंदनों में गोशीर्ष चंदन प्रकृष्ट है, औषिधयुक्त पर्वतों में हिमवान् श्रेष्ठ है, नदियों में सीतोदा बड़ी है, समुद्र में स्वयम्भूरमण बृहत्तम है तथा हाथियों में ऐरावत, स्वर्गों में ब्रह्मस्वर्ग (पंचम स्वर्ग), दानों में अभयदान, मुनियों में तीर्थंकर और वनों मे नन्दनवन उत्कृष्ट है, वैसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ है।

259. ब्रह्मचर्य, भगवान्

तं बंभं भगवंतं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1260]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/9/27*

यह ब्रह्मचर्य ही भगवान् है।

260. सारभूत ब्रह्मचर्य

सव्वपवित्त सुनिम्मियसारं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/9/27*

यह ब्रह्मचर्य जगत् के सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनानेवाला है।

261. ब्रह्मचर्य, महातीर्थ

सव्वसमुद्दमहोदधि तित्थं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/9/27*

यह ब्रह्मचर्य समस्त समुद्रो में स्वयंभूरमण समुद्र के समान दुस्तर है, किंतु तैरने का उपाय होने के कारण यह तीर्थ स्वरूप है।

262. सुरनरपूजित, ब्रह्मचर्य

देवणरिंदणमंसिय पूयं, सव्वजगुत्तममंगलमग्गं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

यह ब्रह्मचर्य देवेन्द्रों-नरेन्द्रों द्वारा पूजित है और नमस्कृत है तथा समस्त जगत् में उत्कृष्ट मंगल-मार्ग है ।

263. ब्रह्मचर्य, अद्वितीय गुणनायक

दुद्धरिसंगुणनाशकमेक्कं मोक्खपहस्सऽवडिंसगभूयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

यह ब्रह्मचर्य दुर्द्धर्ष है अर्थात् इसको कोई पराजित नहीं कर सकता है । यह गुणों का अद्वितीय नायक है । ब्रह्मचर्य ही एक ऐसा साधन है जो आराधक को अन्य सभी सद्गुणों की ओर प्रेरित करता है ।

264. ब्रह्मचर्य, मुक्ति-द्वार

सिद्धिविमाण अवंगुयदारं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

और तो क्या ? यह ब्रह्मचर्य मुक्ति और स्वर्ग के द्वार भी खोल देता है ।

265. ब्रह्मचर्य श्रेयस्कर

तहेव इहलोइय पारलोइय जसे य कित्ती य ।
पच्चओ य तम्हा निहुएण बंभचेरं चरियव्वं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

ब्रह्मचर्य के प्रभाव से इस लोक-परलोक में यश-कीर्ति और विश्वास प्राप्त होता है, इसलिए निश्चल भाव से ब्रह्मचर्य का आचरण करना चाहिए ।

266. महाव्रत-मूल

पंच महव्वय सुव्वयमूलं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

– *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

यह ब्रह्मचर्यव्रत पंच महाव्रत रूप शोभन व्रतों का मूल है अर्थात यह ब्रह्मचर्य महाव्रतों और अणुव्रतों का मूल है ।

267. ब्रह्मचर्य

समण मणाइल साहुसुचिण्णं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

– *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

यह ब्रह्मचर्य शुद्ध हृदयवाले साधु पुरुषों द्वारा आचरित है ।

268. वैरनाशक औषध

वेर विरमण पज्जवसाणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1261]

– *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

यह ब्रह्मचर्य वैरभाव की निवृत्ति और उसका अन्त करनेवाला है ।

269. सच्चा भिक्षु !

स एव भिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1262]

– *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

जो शुद्ध भाव से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वस्तुत: वही भिक्षु है ।

270. ब्रह्मचर्य-गरिमा

जेण सुद्ध चरिएण भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1262]

– *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

ब्रह्मचर्य के शुद्ध आचरण से ही उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण और उत्तम साधु होता है ।

271. ब्रह्मचारी क्या करें ?

तव संजम बंभचेर घातोवघातियाइं
अनुचरमाणेणं बंभचेरं वज्जेयव्वाइं सव्वकालं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1262]
— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

जिन-जिन कार्यों से तपश्चर्या, संयम और ब्रह्मचर्य का आंशिक या पूर्णत: विनाश होता है, ब्रह्मचारी को सदैव के लिए उनका त्याग कर देना चाहिए ।

272. ब्रह्मचर्य दृढ़ कैसे ?

णियमा तव गुण-विनयमादिएहिं
जहा से थिरतरकं होइ बंभचेरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1262]
— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

तप, नियम, मूलगुण और विनयादि से अन्त:करण को वासित करना चाहिए, जिससे ब्रह्मचर्य खूब स्थिर-दृढ़ हो ।

273. जिनोपदेश

इमं च अबंभचेर विरमण परिरक्खणट्ठयाए
पावयणं भगवयासुकहियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1262]
— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

अब्रह्मचर्य निवृत्ति (ब्रह्मचर्य की रक्षा) के लिए भगवान् ने यह प्रवचन दिया है ।

274. ब्रह्मचारी क्या न करें ?

तव-संजम बंभचेर घातोवघातियाओ अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण कहेयव्वा ण सुणेयव्वा ण चिंतेयव्वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1263]
— *प्रश्नव्याकरण 2/9/27*

ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले साधक तप-संयम और शील-सदाचार का घात-उपघात करनेवाली कथाएँ न कहें, न सुनें और न ही उनका मन में चिन्तन करें ।

275. वही निर्ग्रन्थ

णाति भत्त पाण भोयणभोई से णिग्गंथे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1264]

– ***आचारांग** 2/3/15*

जो आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करता है, वही ब्रह्मचर्य का साधक सच्चा निर्ग्रन्थ है ।

276. ब्रह्मचारी का व्यवहार

तव-संयम-बंभचेर घातोवघातियाइं
अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण चक्खुसा,
ण मणसा ण वयसा पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1264]

– ***प्रश्नव्याकरण** 2/9/27*

जिन व्यवहारों से ब्रह्मचर्य और तप-नियम का नाश-विनाश होता है, उन्हें ब्रह्मचारी न नेत्रों से देखें, न मन से सोचें और न उनके सम्बन्ध में वचन से कुछ बोले तथा न पापमय कार्यों की कामना करे ।

277. ब्रह्मचारी का कार्यकलाप

तव-संजम-बंभचेर घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण तातिं समणेण लब्भादट्ठु ण कहेउं ण वि सुमरिउं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1264]

– ***प्रश्नव्याकरण** 2/9/27*

जो कार्य-व्यवहार तप-संयम और सदाचार का घात-उपघात करनेवाले हैं, उन्हें ब्रह्मचर्यपालक साधक नहीं देखे, इनसे सम्बन्धित वार्तालाप नहीं करे और पूर्वकाल में जो देखे-सुने हों; उनका स्मरण भी नहीं करे ।

278. भोजन ऐसा हो !

तहा भोत्तव्वं-जहा से जाया माता य भवति ।
न य भवति विब्भमो, न भंसणा य धम्मस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1265]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए जो जीवनयात्रा एवं संयम-यात्रा के लिए उपयोगी हो सके और जिससे न किसी प्रकार का विभ्रम हो: और न धर्म की भर्त्सना ।

279. साधु ऐसा आहार न करें !

ण दप्पणं न बहुसो ण णितिक न सायसूपाहिकं ण खद्धं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1265]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/9/27***

संयमशील सुसाधु इन्द्रियोत्तेजक आहार न करें । दिनमें बहुत बार न खाए, प्रतिदिन लगातार नहीं खाए और न दाल-शाकादि अधिकतावाला प्रचुर भोजन करें ।

280. ब्रह्मचर्य पालन दुष्करतम

शक्यं ब्रह्मव्रतं घोरं, शूरैश्च न तु कातरैः ।
करि पर्याणमुद्वाह्यं करिभि र्न तु रासभैः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1266-1282]

— ***समवायांगसूत्रसटीक 1 सम.***

जैसे हाथी का पलाण हाथी ही उठा सकते हैं, गधे नहीं, वैसे ही घोर ब्रह्मचर्यव्रत का शूरपुरुष ही पालन कर सकते हैं, कायर नहीं ।

281. अप्रमादी साधक

गुत्तिदिए गुत्त बम्भयारी,
सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1267]

— *उत्तराध्ययन 16/1*

जितेन्द्रिय और गुप्त ब्रह्मचारी सदा अप्रमादी होकर ही विचरण करें ।

282. स्त्री-कथा-वर्जन

नो निग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1268]

— *उत्तराध्ययन 16/2*

जो स्त्रियों की कथा नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

283. स्त्री-सौन्दर्य-विरक्ति

नो निग्गंथे इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं ।
मणोरमाइं आलोइत्ता, निज्झाइत्ता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1268]

— *उत्तराध्ययन 16/4*

निर्ग्रन्थ स्त्रियों के मनोहर और मनोरम अंगोपांग रूप इन्द्रियों को न तो देखें और न ही उनका चिंतन करें ।

284. पूर्वभुक्त भोग की विस्मृति

नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं,
पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1269]

— *उत्तराध्ययन 16/6*

निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को याद नहीं करें ।

285. स्निग्धाहार वर्जित

नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1269]

— *उत्तराध्ययन 16/7*

निर्ग्रन्थ सरस एवं पौष्टिक आहार नहीं करें ।

286. अति आहार-वर्जन

णो निग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं भुंजेज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1269]

– *उत्तराध्ययन 16/8*

निर्ग्रन्थ मर्यादा से अधिक मात्रा में आहार-पानी नहीं करे ।

287. श्रृंगार-वर्जन

नो निग्गंथे विभूसाणुवाई सिया ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1269]

– *उत्तराध्ययन 16/9*

निर्ग्रन्थ श्रृंगारवादी नहीं बने ।

288. कामवर्धक आहार

पणीयं भत्तपाणं तु खिप्पं मय विवड्ढणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1270]

– *उत्तराध्ययन 16/9*

साधक के लिए विषय-विकार को शीघ्र बढ़ानेवाला प्रणीत भक्तपान (सरस स्निग्ध) वर्जनीय है ।

289. विभूषा-निषेध

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीर परिमंडणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थ न धारए ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1270]

– *उत्तराध्ययन 16/11*

ब्रह्मचर्य-साधनारत भिक्षु श्रृंगार का त्याग करें और शरीर की शोभा बढ़ानेवाले केश, दाढ़ी आदि को श्रृंगार के लिए धारण न करें ।

290. भोजन-मर्यादा

नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1270]

— *उत्तराध्ययन 16/10*

ब्रह्मचर्यरत साधक मात्रा से अधिक भोजन नहीं करें ।

291. काम-वर्जन

पंचविहे कामगुणे, निच्चे सो परिवज्जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1270]

— *उत्तराध्ययन 16/12*

ब्रह्मचारी पाँच प्रकार के कामभोगों को सदा के लिए छोड़ दे ।

292. काम, तालपुट

विसं तालउडं जहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1270]

— *उत्तराध्ययन 16/15*

काम-भोग साक्षात तालपुट जहर के समान है ।

293. काम, दुर्जेय

काम भोगा य दुज्जया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1270]

— *उत्तराध्ययन 16/15*

काम-भोग दुर्जेय हैं ।

294. धर्म-वाटिका

धम्मारामे चरे भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1271]

— *उत्तराध्ययन 16/17*

भिक्षु धर्मरूपी वाटिका में ही विचरण करे ।

295. नमनीय कौन ?

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खस्स किन्नरा ।
बभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1271]

— *उत्तराध्ययन 16/18*

उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गंधर्व, यक्ष-राक्षस और किन्नर-ये सभी नमस्कार करते हैं जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

296. ब्रह्मचर्य से सिद्धि

एस धम्मे धुवे नियमे सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहाऽवरे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1271]

— *उत्तराध्ययन 16/19*

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनेश्वरों द्वारा उपदिष्ट है। इस धर्म के द्वारा अनेक साधक सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में होंगे।

297. काम, दुस्त्याज्य

दुज्जए काम भोगे य, निच्चसो परिवज्जए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1271]

— *उत्तराध्ययन 16/16*

स्थिरचित्त साधक भिक्षु कठिनाई से छोड़ने योग्य काम-भोगों को हमेशा के लिए छोड़ दे।

298. अवश्यमेव भोक्तव्य

कडाण कम्माण न मोक्खो अत्थि।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1276]
एवं [भाग 7 पृ. 57]

— *उत्तराध्ययन 4/3 एवं 13/10*

कृतकर्मों को भोगे बिना मोक्ष नहीं हो सकता है।

299. सत्कर्म

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1276]

— *उत्तराध्ययन 13/10*

मानव के सभी सुचरित (सत्कर्म) सफल होते हैं।

300. दुःखद क्या ?

सव्वे कामा दुहावहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1277]

— *उत्तराध्ययन 13/16*

सभी काम-भोग अन्ततः दुःखावह ही होते हैं।

301. नाचरंग-विडम्बना

सव्वं नट्टं विडम्बियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1277]

— *उत्तराध्ययन 13/16*

सभी नाच रंग विडम्बना से भरे हैं।

302. आभूषण, भार

सव्वे आभरणा भारा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1277]

— *उत्तराध्ययन 13/16*

सभी आभूषण भार स्वरूप हैं।

303. शुभफल पूर्वकृत

इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1277]

— *उत्तराध्ययन 13/19*

यहाँ पर जो शुभ कर्म फल दे रहें हैं, वे पूर्वकृत हैं; पहले बाँधे हुए हैं।

304. अभिनिष्क्रमण

आदाण हेउं अभिनिक्खमाहि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1277]

— *उत्तराध्ययन 13/20*

अशाश्वत-भोगों का परित्याग करके मुक्ति के लिए अभिनिष्क्रमण करो।

305. अन्तसमय रक्षक नहीं ?

न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तम्मं सहरा भवन्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
— ***उत्तराध्ययन 13/22***

मृत्यु के समय माता-पिता अथवा भ्राता उसके जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन का अंश देनेवाले नहीं होते।

306. कर्म-छाया

कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
— ***उत्तराध्ययन 13/23***

कर्म सदा कर्ता के पीछे दौड़ता है।

307. यथा कर्म तथा गति

सकम्मबिइओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावगं वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
— ***उत्तराध्ययन 13/24***

यह जीव अपने कृत कर्मों को साथ लेकर अच्छे या बुरे जन्म में चला जाता है।

308. क्यों पीछे पछताय ?

से सोयई मच्चु मुहोवणीए,
धम्मं अकाऊण परंमि लोए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
— ***उत्तराध्ययन 13/21***

जो बिना धर्माचरण किए ही मृत्यु के मुख में चला गया है, वह परलोक में दुःखी होता है। पश्चात्ताप करता है।

309. मृत्यु की निर्दयता

जहेह सीहोव मियं गहाय,
मच्चू नरं नेइ हू अंतकाले ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
– *उत्तराध्ययन 13/22*

सिंह जैसे मृग को पकड़कर ले जाता है, वैसे ही अन्तसमय में मृत्यु भी मनुष्य को ले जाती है ।

310. अकेला दुःखभोक्ता

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ,
न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1278]
– *उत्तराध्ययन 13/23*

ज्ञाति-सम्बन्धी, मित्र-वर्ग, पुत्र और बांधव कोई भी मनुष्य के दुःख में भाग नहीं बँटा सकते ।

311. सर सूखे, पंछी उड़े !

उवेच्च भोगा पुरिसं चयंति,
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]
– *उत्तराध्ययन 13/31*

जैसे वृक्ष के फल समाप्त हो जाने पर पक्षी उसे छोड़कर चले जाते हैं वैसे ही मनुष्य का पुण्य समाप्त हो जाने पर भोग-साधन उसे छोड़ देते हैं ।

312. जरा जर, जर

वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]
– *उत्तराध्ययन 13/26*

हे राजन ! जरा (वृद्धावस्था) मनुष्य की सुन्दरता को समाप्त कर देती है ।

313. घोरपाप-वर्जन

माकासी कम्माणि महालयाणि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/26*

महती दुर्गति देनेवाले घोरपाप कर्म मत करो ।

314. जीवन मृत्यु की ओर

उवणिज्जइ जीवियमप्पमायं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/26*

यह जीवन शीघ्रातिशीघ्र मृत्यु की ओर चला जा रहा है ।

315. समय

अच्चेइ कालो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/31*

समय बीता जा रहा है ।

316. निशा

तूरन्ति राइओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/31*

रात्रियाँ तेजी से दौड़ी जा रही हैं ।

317. काम-भोग अनित्य

न या वि भोगा पुरिसाण निच्चा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/31*

मनुष्यों के काम-भोग नित्य नहीं है ।

318. काम, कर्मबन्धकारक

भोगा इमे संगकरा हवंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1279]

— *उत्तराध्ययन 13/27*

ये काम-भोग कर्मों का बंध करनेवाले होते हैं।

319. आर्य-कर्म

अज्जाइं कम्माइं करेहि।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1280]

— *उत्तराध्ययन 13/32*

आर्य-कर्मों को (श्रेष्ठ कामों को) करो।

320. दयापरायण

धम्मे ठिओ सव्व पयाणुकम्पी।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1280]

— *उत्तराध्ययन 13/32*

धर्म में स्थिर होकर सभी जीवोंपर दया परायण बनो।

321. अदूषित मन

मणंपि न पओसए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1294]

— *उत्तराध्ययन - 2/11 एवं 2/16*

मन को दूषित मत करो।

322. आत्मा अमर

नत्थि जीवस्स नासोत्ति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1294]

— *उत्तराध्ययन 2/29*

आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

323. क्षमापरायण

धर्मस्य दयामूलं न चाऽक्षमावान् दयां समाधत्ते।
तस्माद्यः क्षान्ति परः, स साधयत्युत्तमं धर्मं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1294]

— *प्रशमरति 168*

'धर्म का मूल दया है' और क्षमारहित व्यक्ति दया को धारण नहीं कर सकता। अत: जो क्षमापरायण है, वही इस उत्तम धर्म को साधता है।

324. अबहुश्रुत कौन ?

जे यावि होइ निव्विज्जे थद्धे लुद्धे अनिग्गहे।
अभिक्खणं उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1306]

— *उत्तराध्ययन 11/2*

जो विद्याविहीन है और जो विद्यासम्पन्न होते भी अहंकारी है, जो रस-लोलुप है, जो अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार असम्बद्ध बोलता है और जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत है।

325. शिक्षा-शत्रु

अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थंभा कोहा पमाएणं रोगेणाऽऽलस्सएण य॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1306]

— *उत्तराध्ययन 11/3*

शिक्षा के लिए अयोग्य पात्र को 5 कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। वे पाँच कारण हैं-अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।

326. अष्ट शिक्षाङ्ग

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खा सीलेत्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सयादंते, ण य मम्ममुयाहरे॥
नासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खा सीलेत्ति वुच्चई॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1306]

— *उत्तराध्ययन 11/4-5*

आठ प्रकार से साधक को शिक्षाशील कहा जाता है। जो हास्य न करे, जो सदा इन्द्रिय और मन का दमन करे, जो मर्म प्रकाशित न करे, जो चरित्र से हीन न हो, जिसका चरित्र दोषों से कलुषित न हो, जो रसों में अतिलोलुप न हो, जो क्रोध न करें और जो सत्यरत हो।

327. सुविनीत कौन ?

हिरिमं पडिसंलीणे सुविणीए त्ति वुच्चई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1307]

— *उत्तराध्ययन 11/13*

जो शिष्य लज्जाशील और इन्द्रिय-विजेता होता है, वह सुविनीत बनता है।

328. गुरुकुलवास

वसे गुरुकुले निच्चं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1307]

— *उत्तराध्ययन 11/14*

साधक नित्य गुरुकुल में (ज्ञानियों की संगति में) रहें।

329. प्रियंकर-प्रियवादी

पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1307]

— *उत्तराध्ययन 11/14*

प्रियकार्य करनेवाला और प्रियवचन बोलनेवाला अपनी अभीष्ट शिक्षा प्राप्त करने में सफल होता है।

330. सुशिक्षित

न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1307]

— *उत्तराध्ययन 11/12*

सुशिक्षित व्यक्ति स्खलना होने पर भी किसी पर दोषारोपण नहीं करता है और न कभी मित्रों पर क्रोध ही करता है। और तो क्या, मित्र से मतभेद होने पर भी परोक्ष में उसकी भलाई की बात करता है।

331. बहुश्रुत, सिंहवत्

सीहे मियाण पवरे, एवं भवइ बहुस्सुए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1308]

— *उत्तराध्ययन 11/20*

जैसे सिंह मृगों में श्रेष्ठ होता है, वैसे ही बहुश्रुत व्यक्ति जनता में श्रेष्ठ होता है।

332. बहुश्रुत, अजेय

जहाऽऽइण्ण समारूढे, सूरे दढपरक्कमे।
उभओ नंदिघोसेणं, एवं भवइ बहुस्सुए॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1308]

— *उत्तराध्ययन 11/17*

जिसप्रकार उत्तम जाति के अश्व पर चढ़ा हुआ महान् पराक्रमी शूरवीर योद्धा दोनों ओर बजनेवाले विजयवाद्यों के आघोष से सुशोभित होता है, उसीप्रकार बहुश्रुत विद्वान् भी परवादियों से शास्त्रार्थ में पराजित नहीं होता हुआ सुशोभित होता है अर्थात् वह स्वाध्याय के मांगलिक स्वरों से अलंकृत होता है।

333. बहुश्रुत, तपोज्ज्वल

जहा से तिमिर विद्धं से, उत्तिट्ठं ते दिवाकरे।
जलंते इव तेएणं एवं भवइ बहुस्सुए॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1309]

— *उत्तराध्ययन 11/24*

जैसे तिमिरनाशक उदीयमान सूर्य अपने तेज से जाज्वल्यमान प्रतीत होता है, वैसे ही बहुश्रुत ज्ञानी तप की प्रभा से उज्ज्वल प्रतीत होता है।

334. बहुश्रुत, सुधाकर

जहा से उडुवई चंदे, नक्खत्त परिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं भवइ बहुस्सुए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1309]
— *उत्तराध्ययन 11/25*

जिसप्रकार नक्षत्र परिवार से परिवृत्त गृहपति चंद्रमा पूर्णिमा को परिपूर्ण होता है । उसीप्रकार संतवृन्द-परिवार से परिवृत्त बहुश्रुत ज्ञानी समस्त कलाओं से परिपूर्ण होता है ।

335. बहुश्रुतता मुक्तिदायिनी

सुयस्स पुण्णा विपुलस्स ताइणो,
खवेत्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1310]
— *उत्तराध्ययन 11/31*

विपुल श्रुतज्ञान से पूर्ण और षट्कार्यरक्षक महात्मा कर्मों को सर्वथा क्षय करके उत्तम गति में पहुँचे हैं ।

336. मोक्षान्वेषक

सुय महिट्ठिज्जा उत्तमट्ठ गवेसए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1310]
— *उत्तराध्ययन 11/32*

श्रुत शास्त्र का अध्ययन करके और ज्ञान में सुस्थित होकर मोक्ष की गवेषणा करे एवं अनंतता की खोज करे ।

337. बहुश्रुत, सर्वश्रेष्ठ

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।
सीया नीलवंत पहवा, एवं भवइ बहुस्सुए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1310]
— *उत्तराध्ययन 11/28*

जिसप्रकार नीलवान् पर्वत से निकलकर सागर में मिलनेवाली सीता नदी सब नदियों में श्रेष्ठतम है। उसीप्रकार बहुश्रुत आत्मा सर्व साधुओं में श्रेष्ठ होता है।

338. बहुश्रुत, रत्नाकर

जहा से सयंभुरमणे, उदही अक्खओदए ।
णाणारयण पडिपुण्णे, एवं भवइ बहुस्सुए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1310]
— *उत्तराध्ययन 11/30*

जिसप्रकार अगाधजल से परिपूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र अनेक प्रकार के रत्नों से भरा हुआ होता है। उसीप्रकार बहुश्रुत-आत्मा अक्षय ज्ञान गुण से परिपूर्ण होता है।

339. बहुश्रुत, मन्दराचल

जहा से नागाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी ।
नाणो सहिपज्जलिए, एवं भवइ बहुस्सुए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1310]
— *उत्तराध्ययन 11/29*

जिसप्रकार अनेक औषधियों से प्रदीप्त अति महान् मन्दराचल पर्वत सभी पर्वतों में श्रेष्ठ है। उसीप्रकार बहुश्रुत आत्मा सर्व साधुओं में श्रेष्ठ होता है।

340. बाल-संग

अलं बालस्स संगेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1316]
[भाग 6 पृ. 735]
— *आचारांग 1/2/5/94*

अपरिपक्व बालजीव (अज्ञानी) की संगति से क्या प्रयोजन ?

341. जिज्ञासु के अष्ठ गुण

सुस्सूसइ [१] पडिपुच्छइ [२] सुणेइ [३] गिण्हइ [४] य इहए [५] यावि ।
तत्तो अपोहए वा, [६] धारेइ [७] करेइ वा सम्मं [८] ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1327]
— *नंदीसूत्र 120/85*

विद्याग्रहण करनेवाला व्यक्ति सर्वप्रथम १. सुनने की इच्छा करता है २. पूछता है ३. उत्तर को सुनता है ४. ग्रहण करता है ५ तर्क-वितर्क से ग्रहण किए हुए अर्थ को तोलता है ६. तोलकर निश्चय करता है ७. निश्चित अर्थ को धारण करता है ८. और फिर उसके अनुसार आचरण करता है ।

342. चतुर्धा-बुद्धि

चउव्विहा बुद्धी पन्नत्ता, तं जहा-
उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मया, पारिणामिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1328]
— *स्थानांग 4/4/4/364*

चार प्रकार की बुद्धि कही है-औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी ।

343. कथनी-करनी में एकरूपता

पाठकाः पठिताश्च, ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः, यः क्रियावान् स पण्डितः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1329]
— *स्थानांगसूत्र सटीक 4/4*

जो पढ़ने-पढ़ानेवाले हैं तथा जो शास्त्रों का केवल चिन्तन करनेवाले हैं, वे सब पठनव्यसनी एवं मूर्ख हैं । वस्तुत: पण्डित तो वही है, जो पठन-पाठनादि के अनुसार क्रिया (आचरण) करता है ।

344. ज्ञानानुरूप आचरण

यः क्रियावान् स पण्ड़ितः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1329]

— ***स्थानांगसूत्र सटीक 4/4***

वास्तविक पण्डित तो वही है, जो पठन-पाठनादि के अनुसार आचरण करता है ।

345. कषाय कृशता

इंदियाणि कसाए य, गारवे य किसे गुरु ।
न चेयं ते पसंसामो, किसं साहु सरीरगं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1349]

— ***निशीथ भाष्य 3758***

हम केवल साधक के, अनशन आदि से कृश हुए शरीर के प्रशंसक नहीं हैं, वस्तुतः तो इन्द्रियाँ (वासना), कषाय और अहंकार को ही कृश करना चाहिए ।

346. कार्य-कुशलता

जो जत्थ होई कुसलो, सो उ न हावेइ तं सयं बलम्मि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1353]

— ***व्यवहारभाष्य 10/508***

जो जिस कार्य में कुशल है, उसे शक्ति रहते हुए वह कार्य करना ही चाहिए ।

347. साधनहीन असमर्थ

उवकरणेहिं विहूणो, जहवा पुरिसो न साहए कज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1356]

— ***व्यवहारभाष्य 10/540***

साधनहीन व्यक्ति अभीष्ट कार्य को नहीं कर पाता है ।

348. पाप-मिथ्या

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाए भासिअं पावं ।
काएण य जं च कयं, मिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1358]

— धर्मसंग्रह 3 अधि.

मन, वचन और शरीर से मैंने जो पाप किए हैं, वे मेरे सब पाप मिथ्या हो ।

349. संघ-क्षमापना

आयरिय - उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल-गणे य ।
जम्मि कसाओ कोई वि, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1361. 1358. 317. 418]

— मरण समाधि प्रकीर्णक 335

आचार्य, उपाध्याय, शिष्यगण, साधर्मिक बन्धु, कुल और गण के प्रति मैंने जो भी कषाय भाव किये हों, उसके लिए मैं त्रियोग से क्षमाप्रार्थी हूँ ।

350. सम्यग्दर्शन रत्न-पूजा

सम्मद्दंसणरयणं, नऽग्घइ ससुराऽसुरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 68

लोक में सुर-असुर सभी सम्यग्दर्शन रत्न की पूजा करते हैं ।

351. भयंकर आत्मशत्रु

न वि तं करेइ अग्गी, ने य विसं ने य किण्ह सप्पोवि ।
जं कुणइ महादोसं तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 61

तीव्र मिथ्यात्व आत्मा का जितना अहित एवं बिगाड़ करता है, उतना बिगाड़ अग्नि, विष और काला नाग भी नहीं करते ।

352. संसार-बीज

संसारमूलबीयं मिच्छत्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 59*

संसार का मूलबीज मिथ्यात्व है।

353. जीवों के प्रति आत्मवत् आदर्श

जह ते न पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 90*

जैसे तुम्हें दुःख अप्रिय लगता है वैसे ही सभी जीवों को भी दुःख अप्रिय लगता है। ऐसा जानकर सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् आदर और उपयोग के साथ दया करें।

354. हिंसा-फल

जावइयाइं दुक्खाइं होंति चउगइ गयस्स जीवस्स ।
सव्वाइं ताइं हिंसा फलाइं निउणं वियाणाहि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 94*

यह सुनिश्चित समझो कि चारगति में रहे हुए जीवों को जितने भी दुःख भोगने पड़ते हैं, वे सब हिंसा के फल हैं।

355. अहिंसा-फल

जं किंचि सुहमुयारं, पहुत्तणं पयइ सुंदरं जं च ।
आरोग्गं सोहग्गं तं तमहिं साफलं सव्वं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 95*

संसार में जितने भी उदार, सुख, प्रभुता, सहज सुंदरता, आरोग्य और सौभाग्य दिखाई देते हैं, वे सब वास्तव में अहिंसा के फल हैं।

356. हत्या और दया

जीव अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 93*

किसी भी अन्य प्राणी की हत्या वस्तुतः अपनी ही हत्या है और अन्य जीव की दया अपनी ही दया है ।

357. दर्शनभ्रष्ट, भ्रष्ट

दंसणभट्ठो भट्ठो, दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 66*

जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, वस्तुतः वही भ्रष्ट है, पतित है; क्योंकि दर्शन से भ्रष्ट को मोक्ष प्राप्त नहीं होता ।

358. चंचल मन

जह मक्कडओ खणमवि, मज्झत्थो अत्थिउं न सक्केइ ।
तह खणमवि मज्झत्थो, विसएहिं विणा न होइ मणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 84*

जैसे बंदर क्षणभर भी शांत होकर नहीं बैठ सकता, वैसे ही मन भी संकल्प-विकल्प से क्षणभर के लिए भी शांत नहीं होता ।

359. अहिंसाधर्म, श्रेष्ठ

धम्ममहिंसा समं नत्थि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 91*

अहिंसा के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है ।

360. अहिंसा परमो धर्म

तुंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयम्मि जाणसु, धम्ममहिंसा समं नत्थि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 91*

जैसे विश्व में सुमेरु से ऊँचा और आकाश से विशाल कोई नहीं है वैसे ही सम्पूर्ण विश्व में अहिंसा से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है ।

361. भ्रष्ट कौन ?

दंसणभट्ठो भट्ठो, न हु भट्ठो होइ चरणपब्भट्ठो ।
दंसणमणुपत्तस्स उ, परियडणं नत्थि संसारे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1362]
— ***भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक*** *65*

चारित्र भ्रष्ट आत्मा भ्रष्ट नहीं है, किंतु दर्शन भ्रष्ट (श्रद्धा से गिरा हुआ) आत्मा ही वास्तव में भ्रष्ट है । सम्यग्दृष्टि जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करता ।

362. सत्यवादी-महिमा

विस्ससणिज्जो माया व होइ पुज्जो गुरुव्व लोयस्स ।
सयणुव्व सच्चवाई, पुरिसो सव्वस्स होइ पिओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1363]
— ***भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक*** *99*

सत्यवादी पुरुष माता की तरह लोगों का विश्वासपात्र होता है, गुरु की तरह पूज्य होता है एव स्वजन की तरह सभी को प्रिय लगता है ।

363. हीरा छोड़ काँच को धावे

अवगणिय जो मुक्खसुहं, कुणइ नियाणं असारसुहहेउं ।
सो कायमणि कएणं वेरुलियमणिं पणासेइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1363 **एवं** 1364]
— ***भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक*** *138*

जो मोक्ष सुख की अवगणना कर ससार के असार सुखों के लिए निदान करता है, वह काँच के टुकड़े के लिए वैडूर्यमणि को हाथ से खो बैठता है ।

364. काम-भोगों की असारता

सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो कत्थवि कयलीइ नत्थि जह सारो ।
इन्दियविसएसु तहा नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1364]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 144*

जैसे कदली (केले) में खूब गवैषणा करने पर भी कहीं सार नहीं मिलता, वैसे ही तत्त्वज्ञों ने इन्द्रिय विषय-भोगों में खूब खोज करके भी कहीं सुख नहीं देखा हैं ।

365. विषयासक्ति

इंदिय विसयपसत्ता पडंति संसार सायरे जीवा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1364]

— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 141*

इन्द्रिय विषयों में आसक्त जीव संसार रूप समुद्र में डूब जाते हैं ।

366. सात्त्विकी भक्ति

दुर्लभा सात्त्विकी भक्तिः, शिवावधि सुखावहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1365]

— *धर्मसंग्रह 2/134*

मोक्ष पर्यन्त सुख को देनेवाली सात्त्विकी भक्ति दुर्लभ है ।

367. शरीरं व्याधि मंदिरम्

विविहाऽऽहि वाहिगेहं गेहं पिव जज्जरं इमं देहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1368]

— *धर्मरत्न 1 अधि. 14 गुण*

जर्जरित यह शरीर भी विविध आधि-व्याधियों का मंदिर है, घर है ।

368. निम्नोत्कृष्ट तप-संयम

पुव्वतवसंजमा हों-ति एसिणा पच्छिमो अगारस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1380]

— *निशीथभाष्य 3332*

रागात्मा के तप-संयम निम्न कोटि के होते हैं, जबकि वीतराग के तप-संयम उत्कृष्टतम होते हैं ।

369. शीघ्र मोक्ष

अप्पबंधो जयाणं, बहुणिज्जरणे तेण मोक्खो तु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1380]

— *निशीथभाष्य 3335*

यतनाशील साधक का कर्मबंध अल्प, अल्पतर होता जाता है और निर्जरा तीव्र तीव्रतर । अतः वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

370. निर्भय ज्ञानाधिपति मुनि

चितेपरिणतं यस्य, चारित्रमकुतोभयम् ?
अखण्ड ज्ञानराज्यस्य, तस्य साधोः कुतो भयम् ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/8*

जिसे किसी से कोई भय नहीं है. ऐसा चारित्र जिस के चित्त में परिणत है; उस अखण्ड ज्ञानरूपी राज्य के अधिपति मुनि को भला भय कहाँ से ?

371. ज्ञानकवचधर वीर !

कृत मोहास्त्र वैफल्यं, ज्ञानवर्म बिभर्ति यः ।
क्व भीस्तस्य क्व वा भङ्गः, कर्मसङ्गरकेलिषु ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/6*

जिसने ज्ञानरूप कवच धारण कर मोहराजा के सर्व शस्त्रों को निष्फल कर दिया है, उसे कर्म-संग्राम की क्रीड़ा में भय या पराजय कैसे संभव है ?

372. मुनि, गजवत् निर्भय

एकं ब्रह्मास्त्रमादाय निघ्नन् मोहचमूं मुनिः ।
बिभेति नैव संग्राम-शीर्षस्थ इव नागराट् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/4*

मुनि एक ब्रह्म-ज्ञानरूपी अस्त्र लेकर मोह सैन्य का संहार करता है और संग्राम-मैदान में ऐरावत हाथी की भाँति वह भयभीत नहीं होता है।

373. उस मुनि को भय कहाँ ?

न गोप्यं क्वापि ना रोप्यं, हेयं देयं च न क्वचित्।
क्व भयेन मुनेः स्थेयं, ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/3*

जहाँ न कुछ गोप्य है, न आरोप्य है और न ही हेय या देय है। मात्र ज्ञान से ज्ञेय हैं, उस मुनि को भय कहाँ ?

374. भयमुक्त ज्ञानसुख

भवसौख्येन किं भूरिभयज्वलनभस्मना ।
सदा भयोज्झितज्ञान-सुखमेव विशिष्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/2*

जो असंख्य भय रूपी अग्नि-ज्वालाओं से जलकर राख हो गया है ऐसे सांसारिक सुख से भला क्या लाभ ? प्राय. भयमुक्त ज्ञानसुख ही श्रेष्ठ है।

375. सशक्त और अशक्त

तुलवल्लाघवोमूढा भमन्त्यभ्रे भयाऽनिलैः ।
नैकं रोमापि तै र्ज्ञानगरिष्ठानां तु कम्पते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/7*

आक की रूई की तरह हलके और मूढ़ लोग भयरूपी वायु के प्रचण्ड झोंके के साथ आकाश में उड़ते हैं, जबकि ज्ञान की शक्ति से परिपुष्ट सशक्त महापुरुषों का एकाध रोंगटा भी नहीं फड़कता।

376. ज्ञानदृष्टि

मयूरी ज्ञानदृष्टिश्चेत्, प्रसर्पति मनोवने ।
वेष्टनं भयसर्पाणां, न तदानन्दचन्दने ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1381]

— *ज्ञानसार 17/5*

यदि ज्ञान-दृष्टि रूपी मयूरी, मन रूपी बगीचे में क्रीड़ा करती है तो आनन्द रूपी बावनाचंदन वृक्ष पर भयरूपी सर्प लिपटे नहीं रहते ।

377. भवसागर से भयभीत

यस्य गम्भीरमध्यस्याऽज्ञानवज्रमयं तलम् ।
रूद्धा व्यसनशैलौघैः पन्थानो यत्र दुर्गमाः ॥
पातालकलशा यत्र, भृतास्तृष्णामहानिलैः ।
कषायाश्चित्तसंकल्पवेलावृद्धिं वितन्वते ॥
स्मरौर्वाग्नि र्ज्वलत्यन्त र्यत्र स्नेहेन्धनः सदा ।
यो घोररोगशोकादिमत्स्यकच्छपसंकुलः ॥
दुर्बुद्धिमत्सर द्रोहैर्विद्युद्दुर्वात गर्जितैः ।
यत्र सांय्यात्रिका लोकाः पतन्त्युत्पातसङ्कटे ॥
ज्ञानी तस्माद् भवाम्भोधेर्नित्योद्विग्नोऽति दारुणात् ।
तस्य सन्तरणोपायं सर्वयत्नेन कांक्षति ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1479]

— *ज्ञानसार 22/1-2-3-4-5*

जिसका मध्यभाग गंभीर है, जिसका (भवसमुद्र का) पेंदा (तलभाग) अज्ञान रूपी वज्र से बना हुआ है, जहाँ संकट और अनिष्ट रूपी पर्वतमालाओं से घिरे दुर्गम मार्ग है, जहाँ (संसार-समुद्र में) तृष्णा स्वरूप प्रचण्ड वायु से युक्त पाताल कलश रूपी चार कषाय, मन के संकल्प रूपी ज्वारभाटे को अधिकाधिक विस्तीर्ण करते हैं, जिसके मध्य में हमेशा स्नेह स्वरूप इंधन से कामरूप वड़वानल प्रज्वलित है और जो भयानक रोग-शोकादि मत्स्य और कछुओं से भरा पड़ा है, दुर्बुद्धि, ईर्ष्या और द्रोह-स्वरूप बिजली, तूफान और गर्जन से जहाँ समुद्री व्यापारी तूफान रूपी संकट में पड़ते हैं, ऐसे भीषण संसार-समुद्र से भयभीत ज्ञानी पुरुष उससे पार उतरने के प्रयत्नों की इच्छा रखते हैं ।

378. काँटे से काँटा

विषं विषस्य वह्नेश्च वह्निरेव यदौषधम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1480]

— *ज्ञानसार 22/7*

यह कहावत सत्य है कि 'जहर की दवा जहर है' और 'अग्नि की दवा अग्नि ।'

379. भवभीरु मुनि

तैलपात्रधरो यद्वद्, राधावेधोद्यतो यथा ।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद्, भवभीतस्तथा मुनिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1480]

— *ज्ञानसार 22/6*

जैसे तेल से भरे हुए पात्र को उठाकर चलनेवाला और राधावेध को साधनेवाला अपनी क्रिया में एकाग्रचित्त होता है, वैसे ही भवभीरू मुनि अपनी चारित्र-क्रि या में एकाग्रचित्त होता है ।

380. किल्बिषिक भावना

माई अवणवाई, किव्विसिणं भावणं कुणइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1513]

— *बृहदावश्यक भाष्य 1302*

जो मायावी है और सत्पुरुषों की निंदा करता है; वह अपने लिए किल्बिषिक भावना (पापयोनि की स्थिति) पैदा करता है ।

381. निष्काम साधना

भावणाजोगसुद्धप्पा, जले णावा व आहिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1515]

— *सूत्रकृतांग 1/15/5*

जिस साधक की अन्तरात्मा भावनायोग (निष्काम साधना) से शुद्ध है, वह जल में नौका के समान है अर्थात् वह संसार-सागर को तैर जाता है, उसमें डूबता नहीं है ।

382. कर्म-मुक्ति

तिउट्टंतिपावकम्माणि, नवं कम्ममकुव्वओ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1515]

– *सूत्रकृतांग 1/15/6*

जो नए कर्मों का बंधन नहीं करता है, उसके पूर्वबद्ध पापकर्म भी नष्ट हो जाते हैं ।

383. साधक, जलकमलवत्

तिउट्टति तु उ मेधावी, जाणं लोगंसि पावगं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1515]

– *सूत्रकृतांग 1/15/6*

पापकर्म के स्वरूप को जाननेवाला मेधावी पुरुष संसार में रहता हुआ भी पाप से मुक्त हो जाता है ।

384. भाव-विशुद्धि

भावसच्चेणं भाव विसोहिं जणयइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1517]

– *उत्तराध्ययन 29/52*

भाव सत्य से आत्मा भाव विशुद्धि को प्राप्त करता है ।

385. अर्हद् धर्माराधन

भाव विसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहंतपन्नस्स ।
धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1517]

– *उत्तराध्ययन 29/52*

भाव-विशुद्धि में वर्तमान जीव अर्हत् धर्म की आराधना के लिए समुद्यत होता है ।

386. दूषित भाषा त्याग

भासा दोसं परिहरे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1543]

— *उत्तराध्ययन 1/24*

साधक दूषित (संदिग्ध एवं सावद्य आदि) भाषा का त्याग करें।

387. असत्य-वर्जन

मुसं परिहरे भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1543]

— *उत्तराध्ययन 1/24*

भिक्षु झूठ का परित्याग करे।

388. कपट-त्याग

मायं च वज्जए सया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1543]

— *उत्तराध्ययन 1/24*

कपट मत करो।

389. भाषा-विवेक

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, निरत्थं न मम्मयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1543]

— *उत्तराध्ययन 1/25*

पूछने पर पापयुक्त एवं निरर्थक भाषा मत बोलो।

390. वचन-विवेक

तहेव काणं 'काणे' त्ति, पंडगं 'पंडगे' त्ति वा ।
वाहियं वावि 'रोगि' त्तिं, तेणं 'चोरे' त्ति नो वए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1543-1545]

— *दशवैकालिक 7/12*

काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर नहीं कहना चाहिए।

391. निश्चयात्मक वचन त्याज्य

जत्थ संका भवे तंतु, एवमेयंति नो वए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1544]

– ***दशवैकालिक** 7/9*

जिस सम्बन्ध में कुछ भी शंका जैसा लगता हो, उस संबंध में 'यह ऐसा ही है', ऐसी निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग न करें।

392. निश्चयात्मक भाषा-वर्जन

जमट्ठं तु न जाणेज्जा 'एवमेवं' ति ना वए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1544]

– ***दशवैकालिक** 7/8*

जिस बात का स्वयं को पता न हो, तो उस सम्बन्ध में 'यह ऐसा ही है' ऐसी निश्चयात्मक भाषा न बोलें।

393. विचारयुत वार्तालाप

जहारिहमभिगिज्झ, आलवेज्ज लवेज्ज-वा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1545]

– ***दशवैकालिक** 7/17-20*

श्रमण यथायोग्य गुण-दोष आदि का विचार कर बातचीत करे।

394. भाषा-विवेक

भूओवघाइणिं भासं, नेवं भासेज्ज पण्णवं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1546]

– ***दशवैकालिक** 7/29*

प्राज्ञ पुरुष जीवोपघातिनी (मर्मभेदी) भाषा न बोले।

395. निष्पाप वाणी

सावज्जं नाऽऽलवे मुणी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1547]

– ***दशवैकालिक** 7/40*

मुनि पापयुक्त (सावद्य) भाषा न बोलें।

396. निरवद्य भाषा

अणवज्जं वियागरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1548]

— ***दशवैकालिक*** *7/46*

निरवद्य-पापरहित बोलो।

397. अप्रिय वचन-निषेध

अचियत्तं चेव णो वए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1548]

— ***दशवैकालिक*** *7/43*

अप्रीतिकर वचन मत बोलो।

398. संयत साधु कौन ?

नाणदंसण सम्पन्नं, संजमे य तवे रयं।
एवं गुण-समाउत्तं, संजयं साहुमालवे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1548]

— ***दशवैकालिक*** *7/49*

जो ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न हो, संयम और तपश्चरण में लीन हो और सदा सद्गुणों को धारण करनेवाला हो, उसे सच्चा संयत साधु कहना चाहिए।

399. बोल, तराजू तोल

अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ एवं भासेज्ज पण्णवं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1548]

— ***दशवैकालिक*** *7/44*

प्रज्ञावान् सबप्रकार के वचन सम्बन्धी विधि-निषेधों का पूर्वापर विचार करके बोले!

400. वाणी-विवेक

न लवे असाहुं साहुं त्ति, साहुं साहुंति आलवे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1548]

— ***दशवैकालिक*** *7/48*

किसी के दबाव से असाधु को साधु नहीं कहना चाहिए। साधु को ही साधु कहना चाहिए।

401. बोलो, हँसते हुए नहीं !

न हासमाणो वि गिरं वएज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1548]

— *दशवैकालिक 7/54*

हँसते हुए नहीं बोलना चाहिए।

402. साधु-वाणी

तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1548]

— *दशवैकालिक 7/54*

श्रेष्ठसाधु पापकारी, निश्चयकारी और जीवोपघातकारी भाषा का प्रयोग न करे।

403. निष्पक्ष साधक

देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे ।
अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउ त्ति नो वए ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1548]

— *दशवैकालिक 7/50*

देव, मनुष्य तथा तिर्यञ्च जब परस्पर युद्ध करते हों, तब 'इसकी जय हो और इसकी पराजय हो'-ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि ऐसा बोलने से एक प्रसन्न होता है और दूसरा अप्रसन्न। अत: ऐसी दु:खद स्थिति साधक को उपस्थित करना उपयुक्त नहीं है।

404. वाक्-शुचिता

सवक्कसुद्धिं समुपेहिया मुणी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 7/55*

मुनि सदा वचन-शुद्धि का विचार करें ।

405. दुर्वचन त्याज्य

गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 7/55*

दुष्ट भाषा का सदा परित्याग करें ।

406. अहितकारिणी भाषा-वर्जन

अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 8/47*

जिस भाषा के बोलने से अप्रीति या अप्रतीति (अविश्वास) पैदा हो अथवा दूसरा सुननेवाला शीघ्र ही कुपित होता हो, ऐसी अहित करनेवाली भाषा सर्वथा मत बोलो ।

407. संतजनों की मीठी वाणी

अयंपिरमणुव्विग्गं भासं निसिर अत्तवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 8/48*

आत्मार्थी साधक वाचालता रहित और किसीको भी उद्विग्न नहीं करनेवाली वाणी बोले ।

408. वाणी कैसी हो ?

दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियं जियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 8/48*

आत्मविद् साधक दृष्ट (अनुभूत) सीमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण और स्पष्टवाणी का प्रयोग करे ।

409. कौन प्रशंसनीय ?

मिअं अदुट्ठं अणुवीई भासए,
सयाण मज्झे लहई पसंसणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1549]
– *दशवैकालिक 7/55*

जो सोच समझकर सुन्दर और परिमित शब्द बोलता है, वह सज्जनों के बीच प्रशंसा पाता है ।

410. बोले, बीच में नहीं

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1549]
– *दशवैकालिक 8/46*

बिना पूछे व्यर्थ ही किसी के बीच में नहीं बोलना चाहिए ।

411. पैशुन्य, पीठमांस-भक्षण

पिट्ठिमंसं न खाएज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1549]
– *दशवैकालिक 8/46*

पीठ पीछे किसी की चुगली नहीं खाना चाहिए, क्योंकि किसी की चुगली खाना, पीठ का माँस नोचने के समान है ।

412. परिहास-वर्जन

आयारपण्णत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं ।
वइविक्खलियं णच्चा, न तं उवहसे मुणी ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1549]
– *दशवैकालिक 8/49*

आचारप्रज्ञप्ति के ज्ञाता, दृष्टिवाद के अध्येता साधु भी कदाचित् बोलते समय वचन से स्खलित हो जाय, तो मुनि उनकी हंसी न करे ।

413. मनीषी-अभिव्यक्ति

वएज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 7/56*

प्रबुद्ध ऐसी भाषा बोले जो सभी के लिए हितकर और प्रियंकर हो ।

414. सदोष भाषा-वर्जन

भासाए दोसे य गुणे य जाणिया,
तीसे य दुट्ठाए विवज्जए सया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1549]

— *दशवैकालिक 7/56*

भाषा के गुण-दोषों को जानकर दोषपूर्ण भाषा सदा के लिए छोड़ देनी चाहिए ।

415. भिक्षाचरी

जिण सासणस्स मूलं भिक्खायरिया जिणेहिं पन्नत्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1560]

— *धर्मरत्नप्रकरण 3 अधि. 7 लक्ष.*

जिनेश्वरों ने भिक्षाचरी को जिनशासन का मूल कहा है ।

416. भाव भिक्षु

जो भिंदेइ खुहं खलु, सो भिक्खू भावतो होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1563]

— *उत्तराध्ययन निर्युक्ति 375*

जो मन की भूख (तृष्णा) का भेदन करता है, वही भाव-भिक्षु है ।

417. भिक्षु-लक्षण

खंती य मद्दऽज्जव, वि मुत्तया तह अदीणयति तिक्खा ।
आवस्सग परिसुद्धी, य होंति, भिक्खुस्स लिंगाइं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1564]

— *दशवैकालिक निर्युक्ति 349*

क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता, अदीनता, तितिक्षा और आवश्यक क्रियाओं की परिशुद्धि-ये सब भिक्षु के वास्तविक चिह्न हैं ।

418. सच्चा भिक्षु

वंतं नो पडिया वियति जे, स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1565]

— *दशवैकालिक 10/1*

त्याग किए हुए पदार्थों का जो फिर सेवन नहीं करता है, वही भिक्षु है ।

419. भिक्षु कौन ?

पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासव संवरए जे स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1565]

— *दशवैकालिक 10/5*

जो पाँच महाव्रतों का पालन करता है एवं मिथ्यात्व आदि पाँच आस्रवों को रोकता है, वह 'भिक्षु' है ।

420. आत्मवत् सर्वजीव

अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पिकाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1565]

— *दशवैकालिक 10/5*

षट्काय अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों को अपनी आत्मा के समान समझो ।

421. गुणहीन भिक्षु

जो भिक्खू गुण रहिओ, भिक्खं गिण्हइ न होइ सो भिक्खू ।
वणोण जुत्ति सुवण - गंव असई गुणनिहिम्मि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1565]

— *दशवैकालिक निर्युक्ति 356*

जो भिक्षु गुणहीन है, वह भिक्षावृत्ति करने पर भी भिक्षु नहीं कहला सकता । सोने का झोल चढ़ा देने भर से पीतल आदि सोना नहीं हो सकता ।

422. भिक्षु कौन ?

मणवयकाय सुसंवुडे जे, स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 10/7***

मन-वचन-काया से जो संवृत्त है, वह भिक्षु है।

423. स्वाध्यायरत

सज्झायरए य जे, स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 10/9***

जो स्वाध्याय में रत है, वह साधु है।

424. कषाय त्याज्य

चत्तारि वमे सया कसाए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 10/6***

चारों कषाय सदा त्याज्य हैं।

425. सम्यक्दृष्टि

सम्मदिट्ठी सया अमूढे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 10/7***

जिसकी दृष्टि सम्यक् है, वह कभी कर्तव्य-विमूढ़ नहीं होता।

426. कैसा मत बोलो ?

न य वुग्गहिअं कहं कहेज्जा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 10/10***

कलहवर्धक बात मत कहो।

427. वही भिक्षु

उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566-1571]

— ***दशवैकालिक 10/10***

जो उपशान्त और अपने कर्तव्य के प्रति जागरुक है, वही श्रेष्ठ भिक्षु है।

428. वही अणगार

गिहि जोगं परिवज्जए जे, स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1566]
— *दशवैकालिक 10/6*

जो गृहस्थों से अति-स्नेह सूत्र नहीं जोड़ता, वह भिक्षु है।

429. श्रमण वही

अज्झप्परए सुसमाहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणई जे, स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]
— *दशवैकालिक 10/15*

जो अध्यात्मरत रहता है, जो अपने आपको सुन्दर रीति से समाहित रखता है, जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है, वही भिक्षु है।

430. भिक्षु कौन ?

तवे रए सामणिए जे, स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]
— *दशवैकालिक 10/14*

जो तप और संयम में लीन रहता है, वह 'भिक्षु' है।

431. सच्चा भिक्षु

अत्ताणं न समुक्कसे जे, स भिक्खू।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]
— *दशवैकालिक 10/8*

जो अपनी आत्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर अहंकार नहीं करता, वही भिक्षु है।

432. वही भिक्षु

सव्व संगावगाए अ जे, स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]

— *दशवैकालिक 10/16*

जो सभी द्रव्य और भावासक्ति से दूर है, वही सच्चा भिक्षु है ।

433. कुपितकारी भाषा-त्याग

जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]

— *दशवैकालिक 10/18*

जिससे दूसरा कुपित हो, ऐसी बात भी मत कहो ।

434. रस-अनासक्ति

अलोलो भिक्खू न रसेसु गिद्धे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]

— *दशवैकालिक 10/17*

अलोलुप होता हुआ भिक्षु रसों में आसक्त न हो ।

435. निःस्पृही भिक्षु

इड्ढिं च सक्कार ण पूयणं च,
चए ठियप्पा अणिहे जे, स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]

— *दशवैकालिक 10/17*

जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा की स्पृहा का त्याग कर देता है, ज्ञानादि में स्थितात्मा है और आसक्ति रहित है, वही भिक्षु है ।

436. अनुच्छृंखल भिक्षु

उंछं चरे जीविय नाभिकंखे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1567]

— *दशवैकालिक 10/17*

भिक्षु उच्छृंखल-असंयमी जीवन की आकांक्षा नहीं करें।

437. पृथ्वीवत् क्षमाशील मुनि

पुढवि समे मुणी हवेज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1567]

– *दशवैकालिक 10/13*

मुनि को पृथ्वी के समान क्षमाशील होना चाहिए।

438. धर्म में स्थिर

धम्मे ठिओ ठवयई परं पि ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1567]

– *दशवैकालिक 10/20*

स्वयं धर्म में स्थिर रहकर दूसरों को भी धर्म में स्थिर करना चाहिए।

439. आत्म-प्रशंसा से दूर

अत्ताणं न समुक्कसे ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1567]

– *दशवैकालिक 8/30*

अपनी बढ़ाई मत करो।

440. धर्मध्यानरत भिक्षु

धम्मज्झाणरए य जे, स भिक्खू ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1567]

– *दशवैकालिक 10/19*

जो धर्म-ध्यान में सतत रत रहता है, वही सच्चा भिक्षु है।

441. अनासक्त श्रमण

जे कम्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1568]

– *उत्तराध्ययन 15/2*

जो किसी भी वस्तु में मूर्च्छा भाव न रखे, वही सच्चा भिक्षु है।

442. वही श्रमण

असिप्पजीवी अगिहे, अमित्ते,
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के ।
अणुक्कसाई न हु अप्पभक्खी,
चेच्चा गिहं एगं चरे स भिक्खू ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1571]

— *उत्तराध्ययन 15/16*

जो शिल्प-जीवी नहीं है, जिसके घर नहीं है, जिसके मित्र नहीं है. जो जितेन्द्रिय और सर्वप्रकार के परिग्रह से मुक्त है. जो अल्पकषायी है, जो निस्सार और वह भी अल्पभोजन करता है और जो घर का त्याग कर अकेला राग-द्वेष रहित होकर विचरण करता है; वही भिक्षु है ।

443. सर्वभयमुक्त साधक

ण भातियव्वं भयस्स वा, वाहिस्स वा रोगस्स वा ।
जराए वा मच्चुस्स वा, एगस्स वा एवमादियस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

साधक को देव मनुष्यादि भय से, कुष्ठादि व्याधि से, ज्वरादि रोगों से, बुढ़ापे से और तो क्या मृत्यु से या इसीतरह के अन्य किसी भी भय से नहीं डरना चाहिए ।

444. भीरु, असमर्थ

सप्पुरिस निसेवियं च मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

भयभीत व्यक्ति सत्पुरुषों द्वारा आचरित मार्ग का अनुसरण करने में समर्थ नहीं होता ।

445. निर्भय रहो

न भाइयव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयभीत नहीं होना चाहिए।

446. भीरु, भयग्रस्त

भीतं खु भया अइति लहुयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भीरु मनुष्य को अनेक भय शीघ्र ही जकड़ लेते हैं।

447. भीरु साधक

भीती य भरं ण नित्थरेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयभीत साधक स्वीकृत कार्यभार का भलीभाँति निर्वाह नहीं कर सकता।

448. भयभीत मानव

भीतो तपसंजमं पि हु मुएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयभीत बना हुआ पुरुष निश्चत ही तप और संयम की साधना भी छोड़ बैठता है।

449. असहाय

भीतो अबितिज्जओ मणूसो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयभीत मनुष्य असहाय रहता है।

450. भूताक्रान्त

भीतो भूतेहिं घिप्पइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयाकुल व्यक्ति भूत-प्रेतों द्वारा आक्रान्त कर लिया जाता है।

451. भीरु की दशा

भीतो अण्णं पि हु भेसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1590]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

भयभीत मनुष्य स्वयं तो डरता ही है, साथ ही दूसरों को भी भयभीत बना देता है।

452. धर्मतरुमूल, विनय

मूलाउ खंधप्पभओ दुमस्स, खंधाउ पच्छा समुवेंति साहा ।
साहप्पसाहा वि रुहंति पत्ता, तओ सि पुप्फं च फलं रसो य ॥
एवं धम्मस्स विणओ, मूलं से परमं मुक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1593]
एवं [भाग 6 पृ. 1170]

— ***दशवैकालिक 9/2/1***

वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है। स्कन्ध के पश्चात् शाखाएँ निकलती हैं। शाखाओं में से प्रशाखाएँ फूटती हैं और इसके बाद पत्र-पुष्प और रस उत्पन्न होता है। इसीतरह विनय धर्मरूपी वृक्ष का मूल है और उसका सर्वोत्तम रस है-मोक्ष।

453. भोग से निरपेक्ष

भोगेहिं निरवयक्खा, तरंति संसार कंतारं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1604]

— ***ज्ञाताधर्मकथा 1/9/31***

जो विषयो भोगों से निरपेक्ष रहते हैं, वे संसार वन को पार कर जाते हैं।

454. समर्थ त्यागी, कर्मनिर्जरा

भोगी भोगे परिच्चयमाणे,
महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1604]
— *भगवती 7/7/20*

भोग-समर्थ होते हुए भी जो भोगों का परित्याग करता है, वह कर्मों की महान् निर्जरा करता है; उसे मोक्ष रूपी महाफल प्राप्त होना है ।

455. धर्मोत्पन्न भोग भी अनर्थ

धर्मादपि भवन् भोगः प्रायोऽनर्थाय देहिनाम् ।
चन्दनादपि संभूतो, दहत्येव हुताशनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1604]
— *योगदृष्टि समुच्चय 160*

धर्म से भी उत्पन्न भोग प्राणियों के लिए प्रायः अनर्थकर ही होता है । जैसे चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि जलाती ही है ।

456. आशा-तृष्णा-त्याग

आसं च छंदं च विगिंच धीरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]
— *आचारांग 1/2/4/13*

हे धीरपुरुष ! तुम आशा-तृष्णा और स्वच्छंदता का त्याग करो ।

457. मृगतृष्णा

जेण सिया, तेण णो सिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]
— *आचारांग 1/2/4/83*

तुम जिन-वस्तुओं से सुख की आशा रखते हो, वस्तुतः वे सुख के कारण नहीं हैं ।

458. संप्रेक्षा

संतिमरण संपेहाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/85*

शांति (मोक्ष) और मरण (संसार) को देखनेवाला साधक प्रमाद न करे।

459. विषय-अनासक्ति

अप्पमादो महामोहे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/85*

विषयों के प्रति अनासक्त रहें।

460. मोहावृत्त पुरुष

इणमेव णावबुज्झंति जे जणा मोह पाउडा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/83*

जो मनुष्य मोह की सघनता से घिरे हुए हैं, वे इस तथ्य को नहीं समझ पाते कि पौद्गलिक भोगसुख क्षणभंगुर हैं और वे ही शल्य रूप हैं।

461. भोगासक्ति, शल्य

तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/83*

तूने ही उस भोगासक्ति रूप शल्य अर्थात् काँटे का सृजन किया है।

462. पंडितजन-धारणा

ते भो ! वदंति एयाइं .... नरगतिरिक्खाए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/84*

पंडितजन कहते हैं हे पुरुष ! ये स्त्रियाँ आयतन अर्थात् भोग-सामग्री हैं। उनकी यह धारणा है कि उनके दुःख मोह, मृत्यु और नरक तथा नरक के बाद तिर्यंच गति के लिए हैं।

463. संसार व्यथित

थीभि लोए पव्वहिते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/84*

यह संसार स्त्रियों से पीड़ित है, व्यथित है ।

464. शरीर, क्षणभङ्गुर

भेउरधम्मं संपेहाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1607]

— *आचारांग 1/2/4/85*

यह शरीर क्षणभंगुर है, इसकी संप्रेक्षा करे ।

465. हिंसा-वर्जन

नातिवातेज्ज कंचणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1608]

— *आचारांग 1/2/4/85*

किसी भी जीव की हिंसा मत करो ।

466. वीर प्रशंसनीय !

एस वीरे पसंसिते जे ण णिव्विज्जति आदाणाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1608]

— *आचारांग 1/2/4/86*

वही वीर प्रशंसनीय होता है जो संयमी जीवन से खिन्न नहीं होता ।

467. साधक क्रुद्ध न हो

ण मे देति ण कुप्पेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 5 पृ. 1608]

— *आचारांग 1/2/4/86*

'यह मुझे नहीं मिला', 'यह मुझे नहीं देता'-यह सोचकर साधक उसपर क्रुद्ध न हो ।

468. प्रशान्त मुनि

पडिसेहितो परिणमेज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1608]

– *आचारांग 1/2/4/86*

गृहस्वामी निषेध करे तो शांतभाव से वहाँ से वापस लौट जाए ।

469. अल्पभोजी निरोगी

यो हि मितं भुङ्क्ते स बहुं भुङ्क्ते ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1611]

– *नीतिवाक्यामृत 25/38*

एवं धर्मसंग्रह अधि. 1

जो परिमित खाता है, वह बहुत खाता है अर्थात् स्वास्थ्य की दृष्टि से कम खाना ज्यादा हितकारी है ।

470. स्वचिकित्सक

हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा ।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1619]

एवं [भाग 2 पृ. 549]

– *ओघनिर्युक्ति 578*

जो मनुष्य हिताहारी, मिताहारी और अल्पाहारी हैं, उन्हें किसी वैद्य से चिकित्सा करवाने की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं ही अपने वैद्य हैं, चिकित्सक हैं ।

471. परिणाम-बंध

अणुमित्तोऽवि न कस्सइ, बंधो परवत्थुपच्चओ भणिओ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 1621]

– *ओघनिर्युक्ति 57*

बाह्य वस्तु के आधार पर किसी को अणुमात्र भी कर्मबंध नहीं होता । कर्मबंध अपनी भावना के आधार पर ही होता है ।
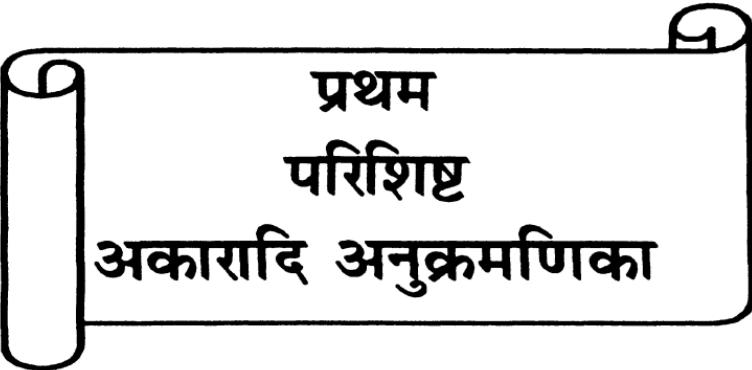
प्रथम

परिशिष्ट

अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
396.	अणवज्जं वियागरे ।	5	1548
397.	अचियत्तं चेव णो वए ।	5	1548
399.	अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ ।	5	1548
406.	अप्पत्तियं जेणसिया ।	5	1549
407.	अयंपिरमणुव्विग्गं ।	5	1549
410.	अपुच्छिओ न भासेज्जा ।	5	1549
420.	अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पिकाए ।	5	1565
429.	अज्झप्परए सुसमाहियप्पा ।	5	1567
431.	अत्ताणं न समुक्कसे जे ।	5	1567
434.	अलोलो भिक्खू न रसेसु गिद्धे ।	5	1567
439.	अत्ताणं न समुक्कमे ।	5	1567
442.	असिप्प जीवी अगिहे अमित्ते ।	5	1571
459.	अप्पमादो महामोहं ।	5	1607
471.	अणुमित्तोऽवि न कस्सइ ।	5	1621
	आ		
18.	आयरिय नमुक्कारेण ।	5	267
36.	आहारमिच्छे मितमेसणिज्जं ।	5	483
84.	आवज्जई इन्द्रियचोरवस्से ।	5	494
129.	आया चेव अहिंसा ।	5	612
132.	आया चेव अहिंसा आया हिंसंति ।	5	612
173.	आयरिय-उवज्झाएहिं ।	5	881
196.	आतुरा परितावेंति ।	5	979
231.	आहार-तणु सत्काराऽ ।	5	1133-113
304.	आदाणहेउं अभिनिक्खमाहिं ।	5	1277
349.	आयरिय-उवज्झाए ।	5	1361
		1358, 317, 418	
412.	आयारपण्णत्तिधरं ।	5	1549
456.	आसं च छंदं च विगिंच धीरं ।	5	1607
	इ		
160.	इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमंथू ।	5	725

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
221.	जं हिययं कलुसमयं ।	5	1033
238.	जं छेयं तं समायरे ।	5	1190
348.	जं जं मणेण बद्धं ।	5	1358
355.	जं किंचि सुह मुयारं ।	5	1362
	ण		
117.	ण सक्काण सोउं सद्दा ।	5	563
120.	ण सक्का रूवमदट्ठुं ।	5	565
122.	ण सक्का रसमणासातुं ।	5	566
148.	ण विता अहमेबलुप्पए ।	5	647
279	ण दप्पणं न बहुमो ।	5	1265
443	ण भातियव्वं भयस्स वा ।	5	1590
	णा		
33	णाणस्स सव्वस्स पगासणाए ।	5	482
275.	णाति भत्तपाणभोयणभोई से णिग्गंथे ।	5	1264
	णि		
272.	णियम तव गुण – विनय मादिएहिं ।	5	1262
	णो		
121.	णो मक्का ण गंधमग्घाउं ।	5	565
123.	णो सक्काण फासं संवेदेतु ।	5	567
286.	णो निग्गंथे अइमायाए ।	5	1269
	त		
37.	तस्मेस मग्गो गुरुविद्धसेवा ।	5	483
38.	तस्सेस मग्गो गुरुविद्ध सेवा विवज्जणा ।	5	483
48.	तण्हा हया जस्म न होइ लोहो ।	5	484
76.	तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो ।	5	490
153.	तत्थ मंदा विसयंति ।	5	647
183.	तवं कुव्वइ मेहावी ।	5	931
213.	तमे नाम मेगे जोती ।	5	1028
233.	तहेव फरुसा भासा ।	5	1143

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष	
		भाग	पृष्ठ
295.	देव दाणव गंधव्वा ।	5	1271
403.	देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे ।	5	1548
	दं		
357.	दंसणभट्ठा भट्ठा, दंसण भट्ठस्स ।	5	1362
361.	दंसण भट्ठो भट्ठो ।	5	1362
	ध		
225.	धर्मस्याऽऽदिपदं दानं ।	5	1076
294.	धम्मारामे चरे भिक्खू ।	5	1271
320.	धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी ।	5	1280
323.	धर्मस्य दयामूलं न चाऽक्षमावान् ।	5	1294
359.	धम्ममहिंसा समं नत्थि ।	5	1362
438.	धम्मे ठिओ ठवयई परंपि ।	5	1567
440.	धम्मज्झाणरए य जे ।	5	1567
455.	धर्मादपि भवन् भोगः ।	5	1604
	धु		
150.	धुणिया कुलियं व लेववं ।	5	647
	न		
52.	न राग सत्तू धरिसेइ चित्तं ।	5	485
72.	न लिप्पई भवमज्झे वि संतो ।	5	490
83.	न कामभोगा समयं उवेंति ।	5	493
86.	न सरणं बाला पंडितमाणिणो ।	5	524
96.	नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो ।	5	555
136.	न य हिंसामित्तेणं ।	5	613
144.	न य संखयमाहु जीवियं ।	5	646
164.	न य अवेदयित्ता ।	5	843
305.	न तस्स माया व पिया ।	5	1278
310.	न तस्स दुक्खं विभयंति ।	5	1278
317.	न या वि भोगा पुरिसाण निच्चा ।	5	1279
322.	नत्थि जीवस्स नासोत्ति ।	5	1294

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
330.	न य पावपरिक्खेवी ।	5	1307
351.	न वि तं करेइ अग्गी ।	5	1362
373.	न गोप्यं क्वापि ना रोप्यं ।	5	1381
389.	न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं ।	5	1543
400.	न लवे असाहुं साहुंत्ति ।	5	1548
401.	न हासमाणो वि गिरं वएज्जा ।	5	1548
426	न च वुग्गहिअं कहं कहेज्जा ।	5	1566
445.	न भाइयव्वं ।	5	1590
467.	न मे देति ण कुप्पेज्जा ।	5	1608
	ना		
25.	नाणी न विणा णाणं ।	5	361
88.	नाति कंडूइ तं सेयं ।	5	546
143.	नाइती वहति अबले विसीयति ।	5	646
156.	नातीणं सरती बाले ।	5	648
180.	नाणचरणस्समूलं ।	5	928
201.	ना गुणी गुणिनं वेत्ति ।	5	1006
290.	नाइमत्तं तु भुंजेज्जा ।	5	1270
398.	नाणदंसणसम्पन्नं ।	5	1548
465.	नाति वातेज्ज कंचणं ।	5	1608
	नि		
115.	निरवकंखे जीवियमरणास ।	5	562
135.	निच्छयमवलंबंता ।	5	613
	नो		
282.	नो निग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा ।	5	1268
283.	नो निग्गंथे इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं ।	5	1268
284.	नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं ।	5	1269
285.	नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।	5	1269
289.	नो निग्गंथे विभूसाणुवाई सिया ।	5	1269

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	पु		
112.	पुक्खरं पत्तं व निरुवलेवे ।	5	561-562
128.	पुरिसा परमचक्खु ! विपरिक्कम ।	5	568
368.	पुव्वतव संजमा हों-ति एसिणा ।	5	1380
437.	पुढवि समे मुणी हवेज्जा ।	5	1567
	पू		
199.	पूर्णता या परोपाधेः ।	5	991
	पं		
31.	पंचैतानि पवित्राणि ।	5	473
266.	पंच महव्वय सुव्वयमूलं ।	5	1261
291.	पंचविहे कामगुणे ।	5	1270
419.	पंच य फासे महव्वयाइं ।	5	1565
	पिं		
179.	पिंड असोहयंतो अचरिती	5	928
	प्रा		
165.	प्राणेभ्योऽपि गुरुर्धर्मः ।	5	848
167.	प्रायः पाप विनिर्दिष्टं ।	5	855
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	फा		
80.	फासेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं ।	5	492
	बा		
147.	बालजणे पगब्भती ।	5	646
	बु		
242.	बुज्झिज्ज तिउट्टेज्जा ।	5	1191
	बृ		
4.	बृहस्पतिरविश्वासः	5	2
	बं		
127.	बंधपमोक्खो तुज्झऽज्झत्थेव ।	5	568

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोश भाग	पृष्ठ
247.	बंभचेरं उत्तम तव ।	5	1259
	भ		
19.	भत्तीइ जिनवराणं खिज्जंती ।	5	267
374.	भवसौख्येन किं भूरिभय ।	5	1381
	भा		
113.	भारण्डे चेव अप्पमत्ते ।	5	562
381.	भावणाजोग सुद्धप्पा ।	5	1515
384.	भाव सच्चेणं भावविसोहिं जणयइ ।	5	1517
385.	भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे ।	5	1517
386.	भासादोसं परिहरे ।	5	1543
414.	भासाए दोसं य गुणे य जाणिया ।	5	1549
	भी		
446	भीतं खु भया अइति लहुयं ।	5	1590
447.	भीती य भर णं नित्थरेज्जा ।	5	1590
448.	भीतो तपसंजमं पि हु मुएज्जा ।	5	1590
449	भीतो अबितिज्जओ मणूसो ।	5	1590
450	भीतो भूतेहिं घिप्पइ ।	5	1590
451.	भीतो अण्णंपि हु भेसेज्जा ।	5	1590
	भू		
394.	भूओवघाइर्णि भासं ।	5	1546
	भे		
464.	भेउर धम्मं संपेहाए ।	5	1607
	भो		
318.	भोगा इमे संगकरा हवंति ।	5	1279
453.	भोगेहिं निरवयक्खा ।	5	1604
454.	भोगी भोगे परिच्चयमाणे ।	5	1604
	म		
32.	मज्जं विसय कसाया निद्दा विगहा ।	5	479

413.	वएज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ।	5	1549
	वि		
17.	विणया हीआ विज्जा ।	5	367
55.	विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ।	5	486
175.	विवायं च उदीरेइ ।	5	882
245.	वित्त सोयरिया चेव ।	5	1192
289.	विभूसं परिवज्जेज्जा ।	5	1270
292.	विसं तालउडंजहा ।	5	1270
362.	विस्ससणिज्जो माया व होइ ।	5	1363
367.	विविहाऽऽहि वाहि गेहं ।	5	1368
378.	विषं विषस्य वह्नेश्च ।	5	1480
	वे		
5.	वेयण वेयावच्चे ।	5	9
244.	वेरं वड्ढेति अप्पणो ।	5	1191
268.	वेर विरमण पज्जवसाणं ।	5	1261
	वं		
418.	वंतं नो पडिया वियति जे ।	5	1565
	व्र		
227.	व्रतस्थालिङ्गिनः पात्र ।	5	1076
251.	व्रतानां ब्रह्मचर्य हि ।	5	1259
	स		
6.	सज्झायं तु तओ कुज्जा ।	5	10
21.	सव्वस्स जीवरासिस्स ।	5	317
22.	सव्वस्स समण संघस्स ।	5	317
			1358
26.	सद्देसु य रुवेसु य, गंधेसु ।	5	381
34.	समाहिकामे समणे तवस्सी ।	5	483
67.	सद्दाणुवाएण परिग्गहेण ।	5	490
68.	सद्दाणुगागा साणुगए य जीवे ।	5	490

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	सा		
12.	साता गारवणि हुए ।	5	59
1 6.	सारयसलिलं सुद्धहियये ।	5	562
1:4.	सा समासओ तिविहा पणत्ता ।	5	648
232.	सामाइय-वयजुत्तो ।	5	1136
395.	सावज्जं नाऽऽलवे मुणी ।	5	1547
	सि		
264	सिद्धिविमाण अवंगुयदारं ।	5	1261
	सी		
331.	सीहे मियाणपवरे ।	5	1308
	सु		
172.	सुदुल्लहं लहिउं ।	5	881
335.	सुयस्स पुण्णा विपुलस्स ताइणो ।	5	1310
336.	सुयमिहिट्ठिज्जा उत्तमट्ठ गवेसए ।	5	1310
341.	सुस्सूसइ पडिपुच्छइ सुणेइ ।	5	1327
364.	सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो कत्थवि ।	5	1364
	से		
308.	से सोचई मच्चु मुहोवणीए ।	5	1278
	सो		
69.	सोयस्स सद्दं गहणं वयंति ।	5	490
239.	सोच्चा जाणइ कल्लाणं ।	5	1190
	सं		
99.	संचिणंति मंदबुद्धी ।	5	555
195.	संति पाणा पूढोसिता ।	5	979
352.	संसारमूलबीयं मिच्छत्तं ।	5	1362
458.	संतिमरण संपेहाए ।	5	1607
	स्		
16.	स्वस्थानाद् यत् परं स्थानं ।	5	261

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	श		
280.	शक्यं ब्रह्मव्रतं घोरं ।	5	1266-1282
	ह		
8.	हत्थिस्स य कुंथुस्स य ?	5	38
	हि		
218.	हिययमपावमकलुसं ।	5	1033
219.	हिययमपावमकलुसं	5	1033
327.	हिरिमं पडिसंलीणे ।	5	1307
490.	हियाहारा मियाहारा ।	5	1619
	ज्ञा		
29	ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव ।	5	389

द्वितीय
परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
		ह
448	356	हत्या और दया
		ही
449	363	हीरा छोड़ काँच को धावे
		हृ
450	219	हृदय घट पर विष-ढक्कन
		हिं
451	133	हिंसा-वृत्ति
452	161	हिंसा
453	162	हिंसा-प्रयोजन
454	164	हिंसा-परिणाम
455	243	हिंसा से वैर
456	354	हिंसा-फल
457	465	हिंसा-वर्जन
		क्ष
458	21	क्षमापना, प्राणीमात्र से
459	22	क्षमापना
460	194	क्षणभङ्गुर शरीर
461	323	क्षमापरायण
		त्रि
462	93	त्रिविध-परिग्रह
463	154	त्रिविध-पर्षदा
464	166	त्रिविध-प्राणायाम
465	105	त्रिलोकपूजित कौन ?
		ज्ञा
466	25	ज्ञानी
467	29	ज्ञानावरणीय बंध
468	198	ज्ञानदृष्टि, गारुडी मंत्रवत्
469	344	ज्ञानानुरूप आचरण
470	371	ज्ञानकवचधर वीर !
471	376	ज्ञानदृष्टि

तृतीय परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-५

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या भाग-5	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
1	2 एवं भाग 7 पृ. 70	31.	473
2	2 एवं भाग 7 पृ. 70	32.	479
3	2 एवं भाग 7 पृ. 70	33.	482
4	2 एवं भाग 7 पृ. 70	34	483
5	9	35.	483
6	10	36	483
7	10	37	483
8	38	38	483
9	38	39	484
10	39-40	40	484
11	40	41	484
12	59 एव भाग 6 पृ. 1406	42	484
13	103	43	484
14	10	44	484
15	104	45	484
16	261	46	484
17	267 एव भाग 6 पृ. 1089	47	484
18	267	48	484
19	267	49	484
20	271	50	485
21	317	51	485
22	317-1358	52	485
23	318	53	485
24	357	54	486
25	361	55	486
26.	381	56	486
27.	382	57	486
28	382	58.	487
29.	389	59.	487
30.	398	60.	487

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
61	487
62	488-489
63	489-490
64	489
65	489
66	489
67	490
68	490
69	490
70	490
71	490
72	490
73	490
74	490
75	490
76	490
77	491
78	491
79	491
80	492
81	492
82	493
83	493
84	494
85	495
86	524
87	525
88	546
89	547
90	549
	एवं भाग 7 पृ. 412
91	553
92	553
93	553
94	553 555
95	555
96	555
97	555
98	555
99	555
100	555
101	555
102	555
103	556
104	556
105	556
106	556
107	556
108	556
109	557
110	560
111	560
112	561 562
113	562
114	562
115	562
116	562
117	563
118	564-565-566
119	564-566
120	565
121	565

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
122	566	153	647
123	567	154	648
124	567	155	648
125	568	156	648
126	568	157	697
127	568	158	725
128	568	159	725
129	612	160	725
130	612	161	835
131	612	162	835
132	612	163	843
133	612	164	843
134	613	165	848
135	613	166	848
136	613	167	855
137	643	168	856
138	645	169	858
139	645	170	876
140	645	171	880
141	645	172	881
142	646	173	881
143	646	174	881
144	646	175	882
145	646	176	882
146	646	177	928
147	646	178	928
148	647	179	928
149	647	180	928
150	647	181	928
151	647	182	931
152	647	183.	931

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
184.	936
185.	939
186.	944
187.	953
188.	953
189.	956
190.	956
191.	956
192.	956
193.	956
194.	957
195.	979
196.	979
197	991
198	991
199.	991
200	993
201.	1006
202	1018
203.	1018
204.	1018
205	1018
206.	1024
207.	1026
208.	1026-1027
209.	1026-1034
210.	1026
211.	1026
212.	1026-1034
213.	1028
214.	1029
215.	1030
216.	1032
217.	1033
218	1033
219.	1033
220.	1033
221.	1033
222.	1071
223	1073
एवं भाग 2 पृ 233	
224	1076
एवं भाग 6 पृ 2003	
225	1076
226	1076
227	1076
228	1076
229	1093
230	1097
231	1133-1139
232	1136
233.	1143
234	1143
235.	1165
236.	1190
237.	1190
238.	1190
239.	1190
240.	1191
241.	1191
242.	1191
243.	1191

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
244	1191	275	1264
245	1192	276	1264
246	1257	277	1264
247	1259	278	1265
248	1259	279	1265
249	1259	280	1266-1282
250	1259	281	1267
251	1259	282	1268
252	1259	283	1268
253	1259	284	1269
254	1260	285	1269
255	1260	286	1269
256	1260	287	1269
257	1260-1261	288	1270
258	1260	289	1270
259	1260	290	1270
260	1261	291	1270
261	1261	292	1270
262	1261	293	1270
263	1261	294	1271
264	1261	295	1271
265	1261	296	1271
266	1261	297	1271
267	1261	298	1276
268	1261	एव भाग 7 पृ 57 में है।	
269	1262	299	1276
270	1262	300	1277
271	1262	301	1277
272	1262	302	1277
273	1262	303	1277
274	1263	304	1277

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
305.	1278	336	1310
306.	1278	337	1310
307.	1278	338	1310
308.	1278	339	1310
309	1278	340	1316
310.	1278	341	1327
311	1279	342	1328
312	1279	343	1329
313	1279	344	1329
314	1279	345	1349
315	1279	346	1353
316	1279	347	1356
317	1279	348	1358
318	1279	349	1361-1358-317-418
319	1280		
320	1280	350	1362
321	1294	351	1362
322	1294	352	1362
323	1294	353	1362
324	1306	354	1362
325	1306	355	1362
326	1306	356	1362
327	1307	357	1362
328	1307	358	1362
329	1307	359	1362
330	1307	360	1362
331	1308	361	1362
332.	1308	362	1363
333.	1309	363	1363-1364
334.	1309	364.	1364
335.	1310	365	1364

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
366	1365	397	1548
367	1368	398	1548
368	1380	399	1548
369	1380	400	1548
370	1381	401	1548
371	1381	402	1548
372	1381	403	1548
373	1381	404	1549
374	1381	405	1549
375	1381	406	1549
376	1381	407	1549
377	1479	408	1549
378	1480	409	1549
379	1480	410	1549
380	1513	411	1549
381	1515	412	1549
382	1515	413	1549
383	1515	414	1549
384	1517	415	1560
385	1517	416	1563
386	1543	417	1564
387	1543	418	1565
388	1543	419	1565
389	1543	420	1565
390	1543-1545	421	1565
391	1544	422	1566
392	1544	423	1566
393	1545	424	1566
394	1546	425	1566
395	1547	426	1566
396	1548	427	1566, 1571

[illegible]	[illegible]
428	1566
429	1567
430	1567
431	1567
432	1567
433	1567
434	1567
435	1567
436	1567
437	1567
438	1567
439	1567
440	1567
441	1568
442	1571
443	1590
444	1590
445	1590
446	1590
447	1590
448	1590
449	1590
450	1590
451	1590
452	1593
एव भाग 6 पृ 1170 में हैं	
453	1604
454	1604
455	1604
456	1607
457	1607
458	1607
459	1607
460	1607
461	1607
462	1607
463	1607
464	1607
465	1608
466	1608
467	1608
468	1608
469	1611
470	1619
471	1621

चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
अध्ययन/गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

जैन एवं जैनेतर ग्रन्थ: गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका

क्रमांक	सूक्त क्रम	अ./उ./गाथादि
	आचारांग सूत्र	
1	195	1/1/2/11
2	196	1/1/6/49
3	456	1/2/4/43
4	457	1/2/4/83
5	460	1/2/4/83
6	461	1/2/4/83
7	462	1/2/4/84
8	463	1/2/4/84
9	458	1/2/4/85
10	459	1/2/4/85
11	464	1/2/4/85
12	465	1/2/4/85
13	466	1/2/4/86
14	467	1/2/4/86
15	468	1/2/4/86
16	126	1/5/2/57
17	340	1/5/2/94
18	124	1/5/2/154
19	127	1/5/2/155
20	128	1/5/2/155
21	125	1/5/2/156
22	117	2/3/15/130
23	120	2/3/15/131
24	121	2/3/15/132
25	122	2/3/15/133
26	123	2/3/15/134
27	275	2/3/15/787
	आचारांग निर्युक्ति	
28	246	16
	आगमीय सूक्तावलि	
29	251	29/133 पृ. 35
	आवश्यक सूत्र	
30	16	4
31	170	4
	आवश्यक निर्युक्ति	
32	18	2/1110
33	19	2/1110
34	232	2/800
35	20	4/1285
	उत्तराध्ययन सूत्र	
36	386	1/24
37	387	1/24
38	388	1/24
39	389	1/25
40	321	2/11 एवं 16
41	322	2/29
42	324	11/2
43	325	11/3
44	326	11/4-5
45	330	11/12
46	327	11/13
47	328	11/14
48	329	11/14
49	332	11/17
50	331	11/20
51	333	11/24
52	334	11/25
53	337	11/28
54	339	11/29
55	338	11/30
56	335	11/31
57	336	11/32
58	298	13/10
59	299	13/10
60	300	13/16
61	301	13/16
62	302	13/16
63	303	13/19
64	304	13/20
65	308	13/21
66	305	13/22

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
67	309	13/22
68	306	13/23
69	310	13/23
70	307	13/24
71	312	13/26
72	313	13/26
73	314	13/26
74	318	13/27
75	311	13/31
76	315	13/31
77	316	13/31
78	317	13/31
79	319	13/32
80	320	13/32
81	441	15/2
82	442	15/16
83	281	16/1
84	282	16/2
85	283	16/4
86	284	16/6
87	285	16/7
88	286	16/8
89	287	16/9
90	288	16/9
91	290	16/10
92	289	16/11
93	291	16/12
94	292	16/15
95	293	16/15
96	297	16/16
97	294	16/17
98	295	16/18
99	296	16/19
100	172	17/1
101	174	17/3
102	173	17/4
103	176	17/11
104	175	17/12
105	5	26/32
106	6	26/36
107	7	26/43
108	230	28/12
109	13	29/13
110	23	29/13
111	14	29/13
112	168	29/18
113	384	29/52
114	385	29/52
115	33	32/2
116	36	32/2
117	37	32/3
118	38	32/3
119	34	32/4
120	35	32/6
121	41	32/7
122	42	32/7
123	43	32/7
124	45	32/7
125	46	32/8
126	47	32/8
127	48	32/8
128	49	32/8
129	39	32/10
130	40	32/10
131	44	32/10
132	53	32/11
133	52	32/12
134	51	32/13
135	50	32/15
136	55	32/16
137	57	32/18
138	56	32/19
139	54	32/20
140	61	32/21
141	60	32/22
142	58	32/23
143	59	32/24
144	62	32/29
145	64	32/29
146	63	32/30

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
147	66	32/31
148	69	32/35
149	71	32/37
150	68	32/40
151	67	32/41
152	73	32/42
153	76	32/43
154	70	32/44
155	65	32/46
156	72	32/47
157	75	32/48
158	77	32/58
159	79	32/61
160	78	32/63
161	81	32/74
162	80	32/76
163	74	32/87
164	82	32/100
165	83	32/101
166	84	32/104
167	85	32/107

उत्तराध्ययन निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
168	32	180
169	416	375

उत्तराध्ययन चूर्णि

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
170	171	2

उत्तराध्ययन पाइ टीका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
171	29	2

उपदेशमाला

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
172	253	63
173	249	64

ओघनिर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
174	471	57
175	470	578
176	130	747
177	131	748-749
178	133	752-753
179	129	754
180	132	754
181	136	758
182	134	759
183	135	761

कल्पसुबोधिका टीका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
184	184	2/8

तत्त्वार्थ सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
185	92	7/12

तित्थोगाली पयन्ना

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
186	1	22
187	2	22
188	3	22
189	4	22

दशवैकालिक सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
190	236	4 - 32
191	238	4 - 34
192	239 •	4 - 34
193	237	4 - 35
194	182	5/2/42
195	183	5/2/42
196	392	7 - 8
197	391	7 - 9
198	233	7 - 11
199	234	7 - 11
200	390	7 - 12
201	393	7 - 17-20
202	394	7 - 29
203	395	7 - 40
204	397	7/- 43
205	399	7 - 44
206	396	7/-/46
207	400	7/-/48
208	398	7/-/49
209	403	7/-/50
210	401	7/-/54

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
211	402	7'- 54
212	404	7 - 55
213	405	7 -'55
214	409	7 - 55
215	413	7 - 56
216	414	7 - 56
217	229	8'-,26
218	137	8'-'27
219	439	8'- 30
220	410	8 -/46
221	411	8'-'46
222	406	8 - 47
223	407	8 - 48
224	408	8 - 48
225	412	8 - 49
226	452	9 2 1
227	418	10 - 1
228	419	10 - 5
229	420	10 - 5
230	424	10'- 6
231	428	10 - 6
232	422	10 -'7
233	425	10 - 7
234	431	10 -'8
235	423	10 -'9
236	426	10 - 10
237	427	10 - 10
238	437	10 - 13
239	430	10 - 14
240	429	10 - 15
241	432	10 - 16
242	434	10 -'17
243	435	10 - 17
244	436	10 -,17
245	433	10 -'18
246	440	10'-'19
247	438	10'-'20

दशवैकालिक नियुक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
248	26	295
249	27	298
250	28	300
251	417	349
252	421	356

द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
253	166	22 17

धर्मरत्न प्रकरण सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
254	201	1/12
255	367	1 14
256	415	3 7

धर्मसंग्रह सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
257	231	1 37
258	366	2 134
259	167	3
260	348	3 -

नीतिवाक्यामृत

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
261	469	25 38

निशीथ भाष्य

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
262	25	75
263	368	3332
264	369	3335
265	345	3758
266	222	4157
267	30	5877
268	185	6212

नंदीसूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
269	341	120/85

पंचतंत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
270	157	4/101

पंचाशक सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
271	15	5 विवरण

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि

पिंड निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
272	177	88
273	178	99
274	180	100
275	179	101
276	181	102

प्रश्नव्याकरण

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
277	161	1/1/3
278	162	1/1/3
279	163	1/1/4
280	164	1/1/4
281	91	1/5/17
282	94	1/5/17
283	95	1/5/19
284	96	1/5/19
285	97	1/5/19
286	98	1/5/19
287	99	1/5/19
288	100	1/5/19
289	101	1/5/20
290	102	1/5/20
291	252	2/4/-
292	443	2/7/25
293	444	2/7/25
294	445	2/7/25
295	446	2/7/25
296	447	2/7/25
297	448	2/7/25
298	449	2/7/25
299	450	2/7/25
300	451	2/7/25
301	247	2/9/27
302	248	2/9/27
303	254	2/9/27
304	256	2/9/27
305	257	2/9/27
306	258	2/9/27
307	259	2/9/27
308	260	2/9/27
309	261	2/9/27
310	262	2/9/27
311	263	2/9/27
312	264	2/9/27
313	265	2/9/27
314	266	2/9/27
315	267	2/9/27
316	268	2/9/27
317	269	2/9/27
318	270	2/9/27
319	271	2/9/27
320	272	2/9/27
321	273	2/9/27
322	274	2/9/27
323	276	2/9/27
324	277	2/9/27
325	278	2/9/27
326	279	2/9/27
327	109	2/10/28
328	110	2/10/29
329	111	2/10/29
330	112	2/10/29
331	113	2/10/29
332	114	2/10/29
333	115	2/10/29
334	116	2/10/29
335	118	2/10/29
336	119	2/10/29

प्रश्नव्याकरण सूत्र सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
337	255	4

प्रशमरति प्रकरण

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
338	323	168

बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
339	154	1/3

बृहत्कल्पसूत्र भाष्य

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
340	380	1302
341	169	4974
342	17	5203

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
भगवती सूत्र		
343	90	2/5 -
344	454	7 7 20
345	8	7 8 2
346	93	18 7 10
347	24	25 7 -
भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक		
348	352	59
349	351	61
350	361	65
351	357	66
352	350	68
353	358	84
354	353	90
355	359	91
356	360	91
357	356	93
358	354	94
359	355	95
360	362	99
361	363	138
362	365	141
363	364	144
मरणसमाधि प्रकीर्णक		
364	349	335
365	22	336
योगबिन्दु		
366	224	121
367	227	122
368	228	123
369	226	124
370	225	125
[illegible]		
371	165	58
372	455	160

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
[illegible]		
373	9	185
374	10	191
375	11	194-199
व्यवहार भाष्य		
376	346	10/508
377	347	10/540
समवायांग सूत्र सटीक		
378	280	1
सुभाषित रत्न भाण्डागार		
379	250	104
सूत्रकृतांग सूत्र		
380	242	1 1 1 1
381	240	1 1 1 2
382	243	1 1 1 3
383	244	1 1 1 3
384	241	1/1 1 4
385	245	1/1/1 5
386	86	1 1 4 1
387	87	1 1 4/2
388	148	1 2 1 13
389	150	1/2 1 14
390	144	1 2/2/21
391	139	1/2 3 2
392	140	1 2/3/2
393	138	1 2 3/3
394	143	1 2 3 5
395	145	1 2/3 6
396	146	1/2/3/7
397	141	1/2/3/8
398	142	1/2/3/8
399	147	1/2/3/10
400	153	1/3/1/13
401	156	1/3/1/16
402	155	1/3/1/17
403	88	1/3/3/13
404	89	1/3/3/19

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
405	12	1/8/-/18
406	151	1/10/-/14
407	381	1/15/-/5
408	382	1/15/-/6
409	383	1/15/-/6
410	187	2/1/-/-
411	149	2/1/-/13
412	189	2/1/-/13
413	190	2/1/-/13
414	191	2/1/-/13
415	192	2/1/-/13
416	193	2/1/-/13
417	194	2/1/-/13
	[illegible]	
418	186	156
	[illegible]	
419	21	105
	[illegible]	
420	235	2/2/4/107
421	204	4/4/1/240
422	205	4/4/1/253
423	202	4/4/1/256
424	203	4/4/1/256
425	206	4/4/3/312(4)
426	207	4/4/3/319(4)
427	208	4/4/3/319
428	209	4/4/3/319
429	211	4/4/3/319
430	212	4/4/3/319
431	213	4/4/3/327
432	214	4/4/3/329
433	215	4/4/4/346(4)
434	216	4/4/4/359
435	217	4/4/4/360(4)
436	218	4/4/4/360(26)
437	219	4/4/4/360(27)

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
438	220	4/4/4/360(28)
439	221	4/4/4/360(29)
440	342	4/4/4/364
441	158	6/6/-/529
442	159	6/6/-/529
443	160	6/6/-/529
444	210	10/9/-/743
	[illegible]	
445	343	4/4
446	344	4/4
	[illegible]	
447	152	82
	[illegible]	
448	31	13/2
449	200	24/8
	[illegible]	
450	453	1/9/31
	[illegible]	
451	199	1/2
452	198	1/4
453	197	1/6
454	188	4/3
455	374	17/2
456	373	17/3
457	372	17/4
458	376	17/5
459	371	17/6
460	375	17/7
461	370	17/8
462	377	22/1-2-3-4-5
463	379	22/6
464	378	22/7
465	104	25/1
466	105	25/3

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि	क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
467	103	25/4	470	107	25/8
468	108	25/5	471	223	29/1-2
469	106	25/8			

पञ्चम परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस'
में प्रयुक्त
संदर्भ-ग्रंथ सूची

परिशिष्ट-५

1. आचारांग सूत्र
2. आचारांग निर्युक्ति
3. आवश्यक सूत्र
4. आवश्यक निर्युक्ति
5. आगमीय सूक्तावली
6. उत्तराध्ययन सूत्र
7. उत्तराध्ययन निर्युक्ति
8. उत्तराध्ययन चूर्णि
9. उत्तराध्ययन पाइ टीका
10. उपदेशमाला
11. ओघनिर्युक्ति
12. कल्पसुबोधिका टीका
13. तत्त्वार्थ सूत्र
14. तित्थोगालीय पयन्ना
15. दशवैकालिक सूत्र
16. दशवैकालिक निर्युक्ति
17. द्वात्रिंशत्-द्वात्रिंशिका
18. धर्मसंग्रह
19. धर्मरत्न प्रकरण सटीक
20. नीतिवाक्यामृत
21. निशीथ भाष्य
22. नन्दी सूत्र
23. पञ्चाशक सटीक
24. पञ्चतन्त्र
25. पिण्ड निर्युक्ति
26. प्रश्नव्याकरण सूत्र
27. प्रश्नव्याकरण सटीक
28. प्रशमरति प्रकरण
29. बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य
30. बृहदावश्यक भाष्य
31. भगवती सूत्र
32. भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक

33. मरणसमाधि प्रकीर्णक
34. योगबिन्दु
35. योगदृष्टि समुच्चय
36. राजप्रश्नीय सूत्र
37. व्यवहार भाष्य
38. समवायांग सूत्र
39. सुभाषितरत्न भाण्डागार
40. सूत्रकृतांग सूत्र
41. सूत्रकृतांग निर्युक्ति
42. सूत्रकृतांग सटीक
43. संस्तारक प्रकीर्णक
44. स्थानांग सूत्र
45. स्थानांग सूत्र सटीक
46. षड्दर्शन समुच्चय
47. हारिभद्रीयाष्टक
48. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र
49. ज्ञानसाराष्टक

विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

6

विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

ाभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
ामरकोष (मूल)
ाघट कुँवर चौपाई
ाष्टाध्यायी
ाष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
ाक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
ाावश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
त्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
पदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
पदेशमाला (भाषोपदेश)
पधानविधि
पयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
पासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
.क सौ आठ बोल का थोकड़ा
ऽथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
ऽमलप्रभा शुद्ध रहस्य
ऽर्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
ऽरणकाम धेनुसारिणी
ऽल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
ऽल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
ऽल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
ऽल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
ऽाव्यप्रकाशमूल
ुवलयानन्दकारिका
ऽसरिया स्तवन
ब्रापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
ाच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
ातिषष्ठ्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम् .
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

ष्टमी देववन्दन विधि
यूषणाष्टह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
ाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
ण्डरीकाध्ययन सज्झाय
क्रिया कौमुदी
भुस्तवन - सुधाकर
माणनय तत्त्वालोकालंकार
श्नोत्तर पुष्पवाटिका
श्नोत्तर मालिका
ज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
ाकृत व्याकरण विवृत्ति
ाकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
ाकृत शब्द रूपावली
रिव्रत संक्षिप्त टीप
हत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
क्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
क्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
ायहरण स्तोत्र वृत्ति
र्तृरीशतकत्रय
हावीर पंचकल्याणक पूजा
हानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
र्यादापट्टक
ुनिपति (राजर्षि) चौपाई
प्रमञ्जरी काव्य
जेन्द्र सूर्योदय
ाघु संघयणी (मूल)
ालित विस्तरा
ार्णमाला (पाँच कक्का)
ाक्य-प्रकाश
ासठ मार्गणा विचार
वचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।

लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. 'विश्वपूज्य' : (श्रीमद्‌राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)

१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)

१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१६. सुगन्धित-सुमन (FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :

श्री मदनराजजी जैन

द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,
पो. भीनमाल-३४३०२९
जिला-जालोर (राजस्थान)
☎ (02969) 20132